

अंक : १११

जुलाई-सितंबर २०१०

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका



कहानियाँ

डॉ. सुधा ओम टींगरा, चंद्रमोहन प्रधान, सुरेंद्र अंचल,
डॉ. वासुदेव, डॉ. संदीप अवस्थी

आमळे - सामळे

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि'

सागर-सीपाँ

डॉ. प्रेम जनमेजय

१५
रुपये

जुलाई-सितंबर २०१०

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक

डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका

मंजुश्री

संपादन सहयोग

प्रबोध कुमार गोविल

जय प्रकाश त्रिपाठी

अश्विनी कुमार मिश्र

हम्माद अहमद खान

संपादन-संचालन पूर्णतः

अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●

आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.,

वार्षिक : ५० रु.,

(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के

रूप में भी स्वीकार्य है)

कृपया सदस्यता शुल्क

चैक (कमीशन जोड़कर),

मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा

केवल "कथाबिंब" के नाम ही भेजें.

● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●

ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,

देवनार, मुंबई-४०० ०८८.

फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

● न्यूयॉर्क संपर्क ●

Naresh Mittal, Gerard Pharmacy,

903 Gerard Avenue, Bronx NY 10452

Tel : 718-293-2285, 845-304-2414 (M)

● "कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध ●

www.kathabimb.com

e-mail : kathabimb@yahoo.com

(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.)

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.

कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु

१५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.

(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

- ॥ ७ ॥ फंदा क्यों ... ? / डॉ. सुधा ओम ढींगरा
॥ १३ ॥ "पिताजी चिंता न करें !" / चंद्रमोहन प्रधान
॥ १६ ॥ चूल्हे की रोटी / सुरेंद्र अंचल
॥ २० ॥ "सइयां निकस गये..." / डॉ. वासुदेव
॥ २४ ॥ सरहद के पार / डॉ. संदीप अवस्थी

लघुकथाएं

- ॥ ३२ ॥ साया, जीत, लक्ष्य / डॉ. दिनेश पाठक "शशि"
॥ ३५ ॥ चमत्कार / जसविंदर शर्मा
॥ ४९ ॥ सतर्कता / विकास रोहिल्ला "प्रीत"
॥ ४९ ॥ गफलत / जसविंदर शर्मा

गज़लें / कविताएं

- ॥ २९ ॥ गज़ल / राजेंद्र तिवारी
॥ ४२ ॥ दो गज़लें / नूर मुहम्मद "नूर"
॥ ४४ ॥ प्रिय, आ भी जाओ ! / डॉ. भावना शेखर
॥ ४४ ॥ दो गज़लें / सलीम अख़्तर
॥ ४९ ॥ एक वायलिन और समंदर / राही शंकर
॥ ४९ ॥ महके पूरा थाल (कुंडली) / डॉ. कपिल कुमार
॥ ५० ॥ दो सांसें गा रहीं मल्हारें / उमाश्री
॥ ५० ॥ दो गज़लें / चंद्ररेखा ढडवाल

स्तंभ

- ॥ २ ॥ "कुछ कही, कुछ अनकही"
॥ ४ ॥ लेटर बॉक्स
॥ ३० ॥ "आमने-सामने" / डॉ. दिनेश पाठक "शशि"
॥ ३६ ॥ "सागर-सीपी" / डॉ. प्रेम जनमेजय
॥ ४३ ॥ "बाइस्कोप" (सविता बजाज) / बी. आर. इशारा
॥ ४५ ॥ पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण चित्र : डॉ. प्रदीप अग्रवाल (पटना)

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

“कथाबिंब” का जन्म ३१ वर्ष पूर्व एक मध्यमवर्गीय परिवार के प्रांगण में हुआ था. संकल्प लिया कि एक कथाप्रधान पत्रिका निकालनी है, बस! बिना थाह नापे तालाब में कूद जाओ, तैरना आ ही जायेगा. बहरहाल, स्थिति पहले जैसी खराब नहीं है परंतु आज भी, प्रत्येक अंक के लिए नया कुआं खोदना पड़ता है. हर अंक का प्रकाशन-व्यय अधिकांशतः विज्ञापनों से ही पूरा होता है. प्रारंभ से ही हमारी सोच रही है कि पत्रिका अकादमिक न हो. यही कारण है कि हम किसी भी विधा संबंधी लेखादि प्रकाशित नहीं करते. न ही हम लोकार्पण, विमोचन, अभिनंदन, पुरस्कार समारोह संबंधी कोई रपट या समाचार प्रकाशित करते हैं. क्योंकि आम पाठक को इस सब में रुचि नहीं होती. ऐसे “समाचारों” में स्पेस न ज्ञाया कर यह उपयुक्त लगता है कि सीमित पृष्ठों में अधिक से अधिक रचनाओं को स्थान मिले. इसे आप चाहें तो मध्यमवर्गीय मितव्ययता का नाम दे सकते हैं. यह प्रसन्नता का विषय है कि हमारे पास पर्याप्त संख्या में अच्छी रचनाएं प्रकाशनार्थ आ रही हैं. हम सभी रचनाकारों के आभारी हैं. हमारी कोशिश रहती है कि स्वीकृति अथवा अस्वीकृति की सूचना प्रत्येक रचनाकार को शीघ्र से शीघ्र भेज दी जाये. इसी के चलते, कुछ दिन पूर्व एक रचनाकार का पत्र मिला कि उनकी गज़लें क्यों वापस की गयीं, संपादक को कोई समझ नहीं है. ऐसे महान रचनाकारों को मेरा दूर से विनम्र नमन!

यह विदित ही है कि “संस्कृति संरक्षण संस्था” जिसके सौजन्य से “कथाबिंब” प्रकाशित होती है अपने उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में, वर्ष में कई कार्यक्रम आयोजित करती है. सितंबर माह में स्थानीय स्कूली बच्चों को लेकर “संस्कृत श्लोक वाचन प्रतियोगिता” तथा ऑन द स्पॉट “काव्य-सृजन प्रतियोगिता” आयोजित की गयीं. काव्य-सृजन प्रतियोगिता की कुछ पुरस्कृत रचनाएं अगले अंक में छपेंगी.

इस अंक की कहानियों के बारे में कुछ, छुट-पुट : “कथाबिंब” की वेबसाइट “कथाबिंब डॉट कॉम” पर पत्रिका की जानकारी पाकर नॉर्थ कैरोलाइना, अमरीका में रहने वाली लेखिका डॉ. सुधा ओम ढींगरा ने एक कहानी भेजी “फंदा क्यों...?” यही इस अंक की पहली कहानी है. एक समय था जब अमरीका में मज़दूरी करने गये भारतीयों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी. उनका भी शोषण करने वाले कुछ भारतीय ही थे. लेकिन वहां की नागरिकता पा लेने के बाद मज़दूर या अन्य किसी के भरण-पोषण का जिम्मा सरकार का होता है, क्या ऐसी कोई व्यवस्था भारत में नहीं हो सकती ? क्यों भारतीय किसान आत्महत्या करने पर विवश हैं ? अगली कहानी “पिताजी चिंता न करें...!” में चंद्रमोहन प्रधान ने बहुत ही सूक्ष्मता से बच्चों के मन में पिताजी की नौकरी छूट जाने पर उत्पन्न दायित्व-बोध का निरूपण किया है. अपनी-अपनी सामर्थ्य अनुसार, मिलकर सब बच्चे परिवार की मदद करना चाहते हैं. अंक की तीसरी कहानी, चूल्हे की रोटी (सुरेंद्र अंचल) में चूल्हे में सिकती रोटी की सुगंध पिता जी को अच्छी लगती है, वे पुरानी यादों में खो जाते हैं. लेकिन “वर्तमान” की भी उन्हें अच्छी तरह पकड़ है, वे बखूबी समझते हैं कि बेटे-बहू के मन में क्या चल रहा है. अगली कहानी “सइयां निकस गये...” में डॉ. वासुदेव ने एक ग्रामीण परिवार की “सच्चाई” को बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है. यह गांव बिहार, उत्तर प्रदेश - कहीं भी हो सकता है. विपन्न परिवार की हालत सुधारने के उद्देश्य से पति सुदूर चला जाता है. बरसों बाद वह लौटता है लेकिन तब तक बहुत कुछ बदल चुका होता है. अंतिम कहानी के कथाकार डॉ. संदीप अवस्थी (सरहद के पार) कथाबिंब के पाठकों के लिए नया नाम है. वे हमें एक ऐसे वीराने में ले चलते हैं जहां देश की सीमाएं स्पष्ट नहीं हैं. रोज माल इधर से उधर जाता है. तस्करों के इस धंधे में बहुत बड़े-बड़े लोगों के हित जुड़े हुए हैं. ऐसे में यदि एक साधारण कूरियर की जान चली जाये तो क्या फर्क पड़ता है.

जब आपके नियंत्रण में जीवन न हो तो मुंह को गोल करके बोल, “ऑल इज वेल!” आपको थोड़ी देर के लिए उम्मीद बंधेगी, लगेगा कि आज नहीं तो कल परिस्थितियां अनुकूल होंगी. इसी भ्रम में रहते हुए देश की एक बहुत बड़ी जनसंख्या, पसीना बहाते हुए, श्रम करते हुए अपना जीवन होम कर देती है. एअर कन्डीशन्ड सभागृहों में मेज पर मिनरल वाटर की बोतलों के साथ बैठकें होती हैं, सम्मेलन होते हैं लेकिन कहीं भी लेशमात्र भी अंतर आया हो ऐसा नहीं लगता. जो लोग साधन-संपन्न हैं, बड़े-बड़े पदों पर आसीन हैं, उनका एक ही ध्येय रह गया है कि किस तरह अधिक से अधिक धन संचित किया जाये ! इसके लिए कैसे भी हथकंडे अपनाए जायें आज अनुचित नहीं समझा जाता. हर दिन नैतिकता के मापदंड बदल रहे हैं. हमारी अपनी ज़िंदगी के सूत्र हमारे

हाथ में नहीं हैं। हमारा उठना-बैठना, सोचना-समझना, पसंद, न-पसंद सबको मीडिया, खासकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया नियंत्रित कर रहा है। टी. वी. चैनलों की संख्या वृद्धि के साथ सीरियलों और विज्ञापनों की संख्या बढ़ी है। समाचार चैनलों भी टी. आर. पी. बढ़ाने के चक्कर में झूठे-सच्चे समाचार बनाती हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है, हाल में रिलीज हुई फ़िल्म, “पीपली लाइव” – कर्जा चुकाने के लिए दो भाइयों के बीच तय होता है कि छोटा भाई नाथा आत्महत्या कर ले। इससे मुआवज़े की जो रकम मिलेगी उससे कर्जा चुक जायेगा। स्थानीय रिपोर्टर के माध्यम से इस बात की खबर एक चैनल को लग जाती है। चुपचाप चैनल एक्सक्लूसिव कवरेज के लिए एक टीम पीपली गांव रवाना कर देती है। किंतु इसकी भनक तमाम चैनलों को लग जाती है और गांव में चैनलों का मेला लग जाता है। लेकिन नाथा अब मरना नहीं चाहता, वह गांव छोड़ कर भाग जाता है। सब मीडिया वाले हाथ मलते रह जाते हैं।

सीरियलों और विज्ञापनों में जो भी दिखाया जाता है वह कतई विश्वसनीय नहीं होता। बड़े-बड़े मकान या हवेलियां, घर का उच्च कोटि का साजो-सामान, चौबिसों घंटे महंगी-महंगी साड़ियां, गहने पहने हुए भारी मेकअप धारण किये महिलाएं, इन्हीं कपड़ों के साथ वे रात में सोती हैं, सुबह उठकर घर के अंदर बने मंदिर में पूजा करती हैं, रसोई में खाना बनाती हैं। यहां तक कि घर के पुरुष भी हमेशा डिज़ाइनर्स परिधान में रहते हैं, पर अधिकांशतः वे घर की किसी बात में हस्तक्षेप करते नहीं पाये जाते। सारे परिवार की धुरी कोई न कोई महिला अवश्य होती है। ऐसी तड़क-भड़क, शानो-शौकत वाले परिवार भारतवर्ष में तो कहीं दिखायी नहीं देते। सीरियलों में दिखाये गये घटनाक्रम की बात न की जाये तो ही बेहतर। घूम फिर कर वही-वही बातें। कुछ सीरियल तो रबड़ की तरह खिंचते चले जाते हैं। ये “हिंदुस्तानी” सीरियल सारे विश्व में देखे जाते हैं। किसी के पास सोचने के लिए वक्रत नहीं है कि देश की कौन-सी तस्वीर है यह ? सारी चैनलों का एक ही उद्देश्य है कि दर्शकों का एक ऐसा “कैप्टिव” वर्ग बने जो स्वयं की समझ को ताक पर रखकर विज्ञापित उत्पादों को खरीदता रहे। हाल में एक नया ट्रेंड चला है। नयी फ़िल्म की रिलीज से पहले मुख्य कलाकार अलग-अलग सीरियलों में “घुसकर” फ़िल्म का प्रचार करते हैं। रियल्टी शोज़ एस. एम. एस. के माध्यम से पैसा कमाने का बेहतरीन ज़रिया हैं। चैनल के साथ-साथ मोबाइल कंपनी भी मालामाल। हर लगे न फिटकरी, रंग चोखा-चोखा!

टीवी पर दिखाये जाने वाले विज्ञापनों को आप कई वर्गों में रख सकते हैं। चेहरे को गोरा बनाने वाले, बालों को मजबूत और सुनहरा बनाने वाले, काया में निखार लाने वाली क्रीमें, विशेष गुणों से भरपूर टूथपेस्ट, तरह-तरह के शैंपू और साबुन (शारीरिक सौंदर्य बढ़ाने वाले)। सभी उत्पाद विशेषज्ञों द्वारा प्रमाणित होते हैं। इसमें अधिकांश विज्ञापन “हिंदुस्तान यूनीलिवर लिमिटेड” के हैं। दूसरे वर्ग में पेप्सी, कोका कोला, थम्सअप, फलों के रस, मिनरल वाटर आदि (पेय पदार्थ)। पौष्टिक गुणों से भरपूर बिस्किट, मक्खन, चाकलेट, मैगी, वेफर्स, कुरकुरे आदि (खाद्य पदार्थ)। मोबाइल, बाइक, पेंट, फ्रिज, बनियाइनें, कुकर, पानी के फिल्टर, इनवर्टर आदि (घरेलू सामान)। इन विज्ञापनों में अनेक बड़े-बड़े सिने-कलाकार विभिन्न पदार्थों के गुणों और उपयोगिता का पुरजोर बखान करते दिखाये जाते हैं। आपके सामने इतने विकल्प उपस्थित हैं कि समझ में नहीं आता क्या खरीदा जाये और क्या न खरीदा जाये। बहुत से उत्पादों की एक कृत्रिम “आवश्यकता” पैदा की जाती है। हर विज्ञापन आपको ललचाता-लुभाता है। अमुक डियो लगायेंगे तो लड़कियां खिंची चली आयेंगी। विशेष क्रीम लगाने पर ७ या १५ दिनों में चेहरा गोरा और दागरहित हो जायेगा। ये सभी दावे झूठे होते हैं। क्योंकि छोटे-छोटे अक्षरों में छपी इबारत कोई नहीं पढ़ता। हमारे देश में उत्पाद की क्या कीमत हो इस संबंध में खुली छूट है। चलचित्र जगत की हस्तियां एक-एक विज्ञापन के लिए करोड़ों रुपये लेते हैं। इससे पांच रुपये लागत की वस्तु पचास रुपये में बिकती है। मुद्रास्फीति के बढ़ने का यह भी एक कारण है। अगर जनता ऐसे उत्पादों का बायकॉट करे जिसके विज्ञापन में बड़े-बड़े फ़िल्मी कलाकार होते हैं तो कीमतें आप ही आप कम हो जायेंगी। यही बात स्पॉन्सरशिप पर लागू होती है। जब “अमूल” इतने कार्यक्रम स्पॉन्सर करेगा तो मक्खन के दाम तो बढ़ेंगे ही! तमाम प्रतिबंधों के बावजूद शराब के “सरोगेट” विज्ञापन सभी चैनलें दिखाती हैं। पहले क्रिकेट मैच के दौरान, ओवर समाप्ति पर ही विज्ञापन दिखाये जाते थे। लेकिन कुछ दिन पूर्व ओवर के बीच में ही ज़मीन (पिच) तोड़ कर झटके से ब्रांडेड शराब की बोतल ऊपर उठती दिखी। वाह, विज्ञापन का नया तरीका! समाचार चैनलें भी विश्वसनीय नहीं हैं। अब तो हर चैनल पर “पेड समाचारों” की भरमार है। क्या झूठ और क्या सच है यह तय करना बहुत कठिन है।

अंत में, चलते-चलते “आज तक” चैनल पर “मौसम आज तक” में पूरे देश में ट्रेक्टर या सीमेंट लदी गाड़ी घुमा कर सिर्फ़ शहरों का तापमान दिखाना ही क्या मौसम की जानकारी है। क्या देश का उपग्रह से लिया गया चित्र दिखा कर विस्तार से बारिश आदि के संबंध में जानकारी देना संभव नहीं, जैसा और देशों में दिखाया जाता है ?

अरविंद

लेटर बॉक्स

❖ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून '१० अंक प्राप्त हुआ। 'कथाबिंब' जब भी आता है एक ऐसी खुशी लेकर आता है जिसे महसूस तो करता हूँ किंतु पूरी तरह वर्णन नहीं कर पाऊंगा। मुखपृष्ठ ने मन मोह लिया। 'कुछ कही, कुछ अनकही' हमेशा की तरह अपना विशेष प्रभाव छोड़ती है।

इस अंक की एक कहानी ने यह पत्र लिखने को प्रेरित किया। मेरी आयु ८१ वर्ष की है। पढ़ने-लिखने की ही एकमात्र हॉबी है। ढेरों पत्र-पत्रिकाएं पढ़ता हूँ, साधारणतया बुजुर्ग माता-पिता को बेटों-बहुओं के सामने निरीह, बेबस, लाचार, प्रताड़ित दर्शाती कहानियां ही पढ़ने में आती हैं जिनसे हमारी आयु के लोगों का मनोबल प्रभावित होता है। उन्हें लगता है कि अवहेलना, तिरस्कार, अपनों के हाथों अपमान ही इस आयु की नियति है। इस अंक की कहानी 'मंथन' (डॉ. विवेक द्विवेदी) उस लीक से हटकर एक अलग नज़रिया प्रस्तुत करती है और पक्की आयु वालों को निराशा और विषाद से उबरने में सहायक है। कहते हैं कि कभी-कभी कहानियां भी मनुष्य की सोच को एक नयी दिशा दे देती हैं। 'मंथन' भी वैसी ही एक उत्साहवर्धक, आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान उत्प्रेरक कहानी है। डॉ. द्विवेदी और आपको मेरा विनम्र साधुवाद।

ओमप्रकाश बजाज

✉ बी-२, गगन बिहार, गुप्तेश्वर,
जबलपुर (म. प्र.)-४८२००१.

❖ 'कथाबिंब' अंक ११०, अप्रैल-जून '१० प्राप्त हुआ। डॉ. रूपसिंह चंदेल सिद्धहस्त कथाकार हैं, विज्ञान जहां आपकी मुश्किलें सुलझाने में सहायक है, वहीं उसका विकृत रूप भी हमारे सामने आ रहा है। यह सच है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। हर नवजवान पीढ़ी की जेब में जादुई यंत्र है, सड़क चलते, बाईक चलाते वे बातों में मशगूल हैं। उनके बीच क्या-क्या बातें चल रही होती हैं, कोई भी सहज अनुमान लगा सकता है। अपराध बढ़ रहे हैं, पुरानी पीढ़ी चुप है और तेज़ी से अपराधिक जगत में प्रवेश करते अपने होनहारों को देखकर केवल दुख मना रहे हैं। रोकने का कोई उपाय

नहीं।

माननीय पुञ्जीसिंह जी से मैं पूर्व परिचित हूँ, हर क्षेत्र में उनकी लेखनी का मैं शुरू से ही कायल हूँ। 'एक और एकलव्य' गहराई तक असर डालती है। 'इज्जत के रखवाले' में डॉ. पद्मा शर्मा ने बीमारी को जड़ से ही उखाड़ फेंका। सोफ़िया के माध्यम से उन्होंने एक इतिहास ही रच डाला। डॉ. प्रदीप अग्रवाल जी ने 'एक डॉक्टर की मौत' में असंवेदनशील हो रहे समाज की ओर इशारा किया है। कुछ अति भी हमें ले डूबती है। टूटते-बिखरते परिवार की कहानी को डॉ. विवेक जी ने बढ़िया ढंग से चित्रित किया है।

लघुकथाओं में पांचों लघुकथाएं अपना पूरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम हैं। 'आमने-सामने' में कुंवर प्रेमिल को तो बहुत पहले आ जाना चाहिए था। आकर्षक मुखपृष्ठ, मन मोहता है। 'सागर-सीपी' में विष्णु चंद्र शर्मा जी की श्री प्रकाश जी से बातचीत कई आयाम खोलती है।

गोवर्धन यादव

✉ १०३, कावेरी नगर,
छिंदवाड़ा (म. प्र.) ४८०००१

❖ 'कथाबिंब' का नवीनतम अंक अपनी स्तरीयता, मोहकता और पठनीयता से मुझे खूब प्रभावित, प्रेरित कर रहा है। इसकी हर रचना चाहे कहानी हो या कविता-ग़ज़ल सब परम आस्वाद्य हैं। निश्चय ही 'कथाबिंब' से राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्र में परिव्याप्त प्रदूषण का काला मेघ छंटेगा और लोक मन स्वस्थ होगा। मेरी शुभेच्छा है कि 'कथाबिंब' का सफ़र सुखद और उत्कर्षक हो।

डॉ. राज नारायण राय

✉ २२७, पंडितवाड़ी फेज-२, पो-प्रेमनगर,
देहरादून (उ.खं.)-२४८००७

❖ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून '१० अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका में सबसे महत्वपूर्ण आपका संपादकीय लगा। कहानी के कथ्य और शिल्प की चर्चा करते हुए आपने 'परफेक्ट' कहानी की चर्चा की। पर मैं समझता हूँ कि

विकासवादी सिद्धांत के अनुसार पूर्णत्व की कोई सीमा नहीं है. लोगों ने तो ईश्वर तक को अपूर्ण बतलाया है फिर कहानी की कौन कहे!

अंक की कहानियां पढ़ी. जीवन के विविध पक्षों को छूती हुई सभी कहानियां अच्छी हैं. पर मैं 'मंथन' से सबसे अधिक प्रभावित हुआ. हो सकता है इस कारण कि यह मेरे जीवन के अधिक निकट है.

प्रो. भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज़'

✉ एफ. एफ-४, बी-ब्लॉक, सनपॉवर फ्लैट्स,
गुरुकुल रोड, अहमदाबाद-३८००५२

❖ 'प्रतिष्ठित, सुपरिचित पत्रिका 'कथाबिंब' देखने, पढ़ने का सौभाग्य 'सुसाहित्य पुस्तकालय' में हुआ. प्रत्येक अंक बेहतर से बेहतर है. प्रत्येक अंक रुचिकर, ज्ञानवर्धक व पठनीय है.

आपके इस सु-प्रयास के लिए संपादक मंडल के सभी सदस्य बधाई व साधुवाद के पात्र हैं.

संतोष बी. गुप्ता

✉ विशेष कार्यकारी अधिकारी,
महाराष्ट्र शासन, सक्करसाथ, अमरावती- ४४४६०१

❖ 'कथाबिंब' का नया अंक (११०) मिला. कथा-साहित्य पर केंद्रित इस पत्रिका की रचनाएं सहज और पठनीय होती हैं. इस अंक में विष्णुचंद्र शर्मा से बातचीत गहन-गंभीर और विचारोत्तेजक तो है ही, समकालीन साहित्यिक परिदृश्य पर सोचने-विचारने को प्रेरित करती है. कुंवर प्रेमिल की आत्मरचना में सहजता का आकर्षण है. उनकी 'भूख' लघुकथा अच्छी बन पड़ी है, जबकि 'कहां नहीं है मां!' लघुकथा के उत्तरार्ध में लेखकीय हस्तक्षेप रचनात्मकता को मार देता है. राजकमल सक्सेना की लघुकथा भी ठीक-ठाक है.

क्या आप 'विरासत' स्तंभ शुरू कर किसी एक प्रतिष्ठित कथाकार की एक-दो बेहतर लघुकथाएं टिप्पणी सहित हर अंक में शामिल कर सकते हैं? यह न केवल परंपरा को महत्व देने जैसा होगा, समकालीन लघुकथा-लेखन के लिए भी बेहतर होगा.

अशोक भाटिया

✉ १८८२, सेक्टर-१३,
करनाल (हरि.)-१३२००१

❖ 'कथाबिंब' का अंक ११० मिला. बेहद संतोष होता है कि लघु पत्रिका जगत की कथा पत्रिकाओं में

'कथाबिंब' ने अपने विशिष्ट स्थान को बरकरार ही नहीं रखा है बल्कि उत्तरोत्तर उन्नति भी की है. 'कथाबिंब' परिवार को नमन! हर बार की तरह आपका संपादकीय इस बार भी चिंतन को झिंझोड़ता है, तो थोड़ा ढाढ़स भी बंधाता है. कहानी के विषय, प्रारूप पर टिप्पणी ध्यातव्य है. बधाई!

यूं तो हम सभी भारतीय हैं तथापि आप उत्तर प्रदेश के हैं, यह जानकारी सीने में थोड़ा गर्व का संचार करती है. डॉ. रूप सिंह चंदेल और असली डॉक्टर प्रदीप जी की कहानियां, आनंद बिलथरे की लघुकथा, सविता बजाज का संस्मरण ध्यान खींचने में कामयाब हैं.

मनोज अबोध

✉ सरस्वती मार्ग, नयी बस्ती,
बिजनौर (उ. प्र.) २४६७०१

❖ 'कथाबिंब' का ११० वां अंक प्राप्त हुआ. पत्रिका १९७९ से अभी तक निर्बाध गति से साहित्य की सेवा कर रही है यही उसकी प्रौढ़ता, दृढ़ता और संकल्प के प्रति समर्पणता का प्रत्यक्ष प्रमाण है.

इस व्यवसायीकरण के युग में मां भारती की विशुद्ध उपासना में व्याधियां दी व्याधियां हैं. इसके पश्चात पत्रिका, अपने अविजेय संकल्प के कारण निरंतर अग्रसर है. इस अपराजेयता में संपादक का व्यक्तित्व ही मूर्तिमान है. साधुवाद.

अपने ही नगर में राजकीय इंटर कॉलेज फतेहगढ़ में आपकी गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न 'छात्र-सम्मान' का कार्यक्रम, आपका अपनी जन्मभूमि के प्रति श्रद्धा का प्रतीक है. ईश्वर से प्रार्थना है कि पत्रिका के संचालन में संपादक वर्ग को सदैव अनुकूल परिस्थितियां सुलभ बनी रहें.

डॉ. राम दुलारे लाल पाठक

✉ ५/१३०, महावीरगंज-२,
फर्रुखाबाद-२०९६२५

❖ 'कथाबिंब' में श्री विष्णुचंद्र शर्मा का साक्षात्कार आज की कविता के समक्ष उत्पन्न चुनौतियों को उकेरने में सार्थक साबित हुआ है, जिसके लिए 'कथाबिंब' और साक्षात्कारकर्ता प्रकाश श्रीवास्तव बधाई के पात्र हैं.

आपकी टिप्पणी अत्यंत भावोत्तेक और गंभीर है. यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है. 'प्रभामंडल' मंडित अनेक स्व-नामधन्य कथित कवि जैसी कविताएं लिख रहे हैं, इससे संकट और भी गहराता जा रहा है. अधिकतर कविताएं जनसंवेदना और संप्रेषणीयता से कटी हुई हैं. दुर्बोध कविताएं इस विधा का सत्यानाश कर रही हैं. पता नहीं कब हिंदी कविता के मूर्धन्य हस्ताक्षर इस बात को गंभीरता से लेंगे? आज की स्थिति तो निराशा जनक है ही.

गणेश प्रसाद 'गंभीर'

✉ ए-१४/१८, भारद्वाजी टोला,
वाराणसी-२२१००१

❖ मैं 'कथाबिंब' का नियमित पाठक हूँ और लेखक भी. पर कभी-कभी कोई-कोई अंक बार-बार पठनीय बन जाता है. मैं विशेष रूप से अंक-११० (अप्रैल-जून १०) की बात कर रहा हूँ. इसमें पांच कहानियां हैं तथा कुल मिलाकर सभी कहानियां अच्छी हैं.

'वह चुप हैं' (डॉ. रूपसिंह चंदेल) शिक्षण-संस्थान में व्याप्त भ्रष्टाचार की पोल खोलती है. आये दिनों ऐसी घटनाएं कॉलेजों-विश्वविद्यालयों में घटती रहती हैं और मासूम छात्राएं दैहिक शोषण की शिकार होती रहती हैं. 'एक और एकलव्य' (पुत्री सिंह) लेखन एवं साहित्य के क्षेत्र में मूल्यहीनता की जो स्थिति पैदा हो गयी है, उसी का पर्दाफाश करनेवाली कहानी है. साहित्यिक चौर-कर्म एक पुराना धंधा है. 'एक डॉक्टर की मौत' (डॉ. प्रदीप अग्रवाल) 'धरती के देवता' समझे जाने वाले डॉक्टर के अमानवीय कर्म को दर्शाती है. आज भी हमारे समाज में ऐसे पत्थर दिल डॉक्टर मिल जायेंगे जिनके पास हृदय नाम की चीज होती ही नहीं और पैसा ही उनका भगवान होता है. 'मंथन' (डॉ. विवेक द्विवेदी) सेवानिवृत्ति के पश्चात परिवार में बाप-बेटे-बहू के बीच की खींचतान की कहानी है. आज के समाज में वर्षों तक नौकरी करनेवाला बाप सेवानिवृत्ति के बाद अपने अनुसार जीवन नहीं जी सकता. पर कहानी में बाप जीत जाता है. यह एक स्वस्थ दृष्टिकोण की कहानी है.

किंतु इन सबसे अलग पहचान बनानेवाली अंक की सबसे अच्छी कहानी 'इज्जत के रखवाले' (डॉ. पद्मा

शर्मा) है. यह कहानी मात्र एक कहानी ही नहीं अपितु किन्नरों के जीवन का एक दस्तावेज भी है. लेखिका ने हिजड़ों के जीवन के हर पक्ष को उभारा है. यह एक शोधपरक कहानी है. इसमें एक ओर बल्लु है तो दूसरी ओर सोफ़िया. बल्लु के माध्यम से किन्नरों की आंतरिक कथा को उभारा गया है तो सोफ़िया के द्वारा उसके अंदर छिपी मानवता को. जिस समय सोफ़िया प्रतिमा के साथ बलात्कार करनेवाले दादा झिंगा का लिंग काटकर उसे नपुंसक बना देती है उसका चरित्र बहुत ऊंचा उठ जाता है. इसमें यह एक संकेत भी है कि इसी तरह की सजा से महिलाओं की इज्जत की रक्षा हो सकेगी. कहानी का अंत बहु अर्थी है. एक निम्नवर्गीय चरित्र को कैसे ऊंचा उठाया जा सकता है, यह कहानी उसी की एक मिसाल है. यहां प्रसाद की कहानी, 'गुंडा' की याद ताज़ा हो आती है - 'वह काशी का गुंडा था.'

'सागर-सीपी' स्तंभ के अंतर्गत डॉ. विष्णुचंद शर्मा को पढ़कर मन को बहुत सुकून मिला. भगवान उन्हें शतायु बनायें तथा स्वस्थ व सक्रिय रखें. इस साफ-सुथरे व पठनीय अंक के लिए हार्दिक बधाई.

वासुदेव

✉ धर्मशाला कुटीर, ग्राम- अरसंडे,
पत्रा. बोड़ैया, जिला : रांची-८३५२४०

❖ अप्रैल-जून २०१० का अंक मिला. इस अंक में चंदेल जी की कहानी- 'वह चुप हैं' और डॉ. पद्मा शर्मा की 'इज्जत के रखवाले' अत्यंत झकझोरने वाली कहानियां हैं. आमने-सामने में कुंवर प्रेमिल को प्रस्तुत करके आपने पाठकों के समक्ष एक नया रचना संसार गढ़कर महत्वपूर्ण कार्य किया है. अच्छा लगा.

पत्रिका की उत्कृष्टता को देखकर एक व्यक्तिगत विचार आपके सामने रख रहा हूँ वह यह कि यदि संभव हो सके तो एक पेज विरासत या कोई भी शीर्षक के नाम करें जिसमें उन रचनाकारों की रचनाएं छापें जो आज हमसे दूर जा चुके हैं, ताकि हम अपनी उस विरासत पर गर्व महसूस कर सकें और आज के लेखन और तब के लेखन का फ़र्क महसूस कर सकें.

अरविंद राही

✉ १८०२, ए विंग, गिरिराज होरॉयजन,
सेक्टर-२०, खारघर, नयी मुंबई-४१०२१०

फंदा क्यों...?

उसका दिल आज बहुत बेचैन है. किसी भी तरह काबू में नहीं आ रहा, तबीयत बहुत उखड़ी हुई और भीतर जैसे कुछ टूटता-सा महसूस हो रहा है. सुबह के पाठ में भी मन नहीं रमा. चित्त स्थिर नहीं हो पा रहा था, भीतर-बाहर की घुटन जब बढ़ गयी, तो वह अपने बिस्तर से उठ गया. कमरे की खिड़की खोली, ताज़ा हवा का झोंका आया, पर अस्थिरता बढ़ती गयी. वह कमरे में ठहर नहीं सका. बाहर दलान में आ गया. उजाला दबे पांव फैलने की कोशिश कर रहा था. धुंधली रोशनी में, वह अपनी नवार की मंजी देखने लगा. जिसे उसने बड़े शौक से पंजाब से मंगवाया था. वह खेत के एक कोने में पड़ी थी. घुसपुसे में संभल-संभल कर पांव रखता, राह को टोह-टोह कर चलता, वह चारपाई तक पहुंच गया, धम्म से उस पर बैठ गया, जैसे मनो बोज़ ढोह कर लाया हो और चारपाई पर पटका हो. खुली हवा में उसने लंबी सी सांस ली, तनावग्रस्त स्नायु ढीले पड़ते महसूस हुए. खेतों में नवार की मंजी पर बैठना उसे हमेशा अच्छा लगता है. कल यहीं धूप में बैठकर ही तो उसने अख़बार की वे खबरें पढ़ी थीं.

‘सूखे से तंग आकर पंजाब के किसानों ने आत्म-हत्याएं कीं.’

‘कर्ज में डूबे बुंदेलखंड के किसानों ने पत्नियां लगायीं ‘सेल’ पर! इन समाचारों को पढ़कर वह बहुत विचलित हो गया था.

वह स्वयं से ही बातें करने लगा - ‘अगर मैं अमेरिका न आता और पंजाब में ही रह रहा होता, तो मुझे भी शायद आत्महत्या करनी पड़ती. बापू तो कर्ज के बोझ से पहले ही अधमरा था. वह तो यूं ही मर जाता....’

उसके होंठ तो चुप कर गये. पर यादें बोलने लगीं. एक दूसरे से पहले बाहर निकलने की होड़ में भागने लगीं. उसने यादों को समेटा और वे कतारबद्ध बाहर आयीं. शायद उन्हें बाहर ला कर ही उसका मन स्थिर

हो जाये, वह सोचने लगा.....

ग़रीबी से तंग आ चुका था वह, बापू के थोड़े से खेत और बड़ा परिवार, ग़रीबी दूर करने का उसे कोई मार्ग नज़र नहीं आता था. हाड़ी, सोनी आर्ती (गेहूं और मकई बोने का समय)... खेतों में कभी कनक और कभी मकई के बीज डालने के लिए हर वर्ष उसे और उसके बापू को लाले के द्वार जाना पड़ता. घर, बैल और दो चार पारिवारिक गहने तो सब पहले ही उसके पास गिरवी थे. बीज लेने के लिए उसे लाले की कितनी चिरौरी करनी पड़ती और मां-बहन की गालियां सुनते-सुनते वह उसकी गंदी हरकतें भी सहन करता था. मुश्किल से वह बीज देता था. उस दिन तो हद कर दी लाले ने. हुक्का गुड़गुड़ाते हुए अपनी पीठ खुजाते-खुजाते उसने, उसके पैरों पर थूक दिया था. बदबू वाली गिजगिजी बलगम से उसका बदन ग्लानि से भर गया था. वह भागता हुआ सीधा देबू के तालाब पर गया. गीली मिट्टी

॥ डॉ. सुधा ओम डींगरा ॥

से रगड़-रगड़ कर पैर धोता रहा. फिर गांव के बाहर पीपल के पेड़ तले बैठ कर आंखों से बह रहे पानी को अपनी कमीज़ के बाजू से पोंछता रहा. बापू और बाकी परिवार वाले इस जीवन के अभ्यस्त हो चुके थे, पर वह ऐसा जीवन नहीं जीना चाहता था. कई बार वह माले के घर से लायी गयी लस्सी में बासी रोटी भिगो कर, वही खा कर, अपनी भूख मिटाता था. पांचवीं से आगे वह पढ़ नहीं पाया था. स्कूल की फ़ीस, किताबों, कॉपियों के पैसे कहां से आते? गांव में चारों ओर उसके परिवार जैसा ही सबका हाल था...

देश को आज़ाद हुए, कुछ ही वर्ष हुए थे. बंटवारे की पीड़ा चारों तरफ करारह रही थी. लोग शरीर और आत्मा पर घाव लिये घूम रहे थे. परिमंडल में घावों से उठ रही सड़ांध थी. सरकार के लिए गुस्सा और अपने घर, खेत-खलिहान छोड़कर आने की व्यथा. बिछुड़



सुप्रसिद्ध

जालंधर, पंजाब (भारत) में.
बी. ए. ऑनर्स, एम. ए., पीएच. डी. (हिंदी),
पत्रकारिता में डिप्लोमा.

लेखन : कविता, कहानी, उपन्यास, इंटरव्यू, लेख एवं रिपोर्टाज.

प्रकाशन : धूप से रूठी चांदनी (का. संग्रह), मेरा दावा है (का. संग्रह : संपादन), तलाश पहचान की (का. संग्रह), परिक्रमा (पंजाबी से अनुवादित हिंदी उपन्यास), वसूली (कथा-संग्रह, हिंदी व पंजाबी), सफर यादों का (का. संग्रह : हिंदी व पंजाबी), मां ने कहा था (काव्य सी. डी.), पैरां दे पड़ाह (पंजाबी में का. संग्रह), संदली बूआ (पंजाबी में संस्मरण). १२ प्रवासी संग्रहों में कविताएं, कहानियां प्रकाशित. 'कौन सी ज़मीन अपनी' कहानी संग्रह प्रकाशनाधीन. हिंदी चेतना (उत्तरी अमेरिका की त्रैमासिक पत्रिका)

विशेष : की संपादिका. विभौम एंटरप्राइसिस की अध्यक्ष,

गये अपनों का दर्द था. नयी धरती पर स्थापित होने का संघर्ष था. बस बातें ही बातें थीं. पुरानी यादें....

उन्हीं सुधियों की याद में लोगों की आंखें नम होतीं. वे बाहर चारपाई पर बैठ कर अपने दर्द सुनाते. वह सुन ना सकता, वहां से उठकर भाग जाता. वह इतना बड़ा भी नहीं था कि सब समझ पाता. पर दर्द, पीड़ा से वह घबराने लगा था. उसका परिवार पहले से ही उस गांव में था, पर बहुत से लोग नये थे. सीमा पार से आये थे और कई घर खाली हुए थे, कुछ लोग गांव छोड़कर पाकिस्तान चले गये थे और उन घरों को गांव के अमीरों ने संभाल लिया था. अभी लोगों का नयी धरती से नाता जुड़ा ना था और पुरानी धरती का मोह छूटा न था....चारों तरफ आर्थिक तंगी थी.

उसे धुंधला-धुंधला याद है, माले का बड़ा भाई

हिंदी विकास मंडल (नॉर्थ कैरोलाइना) के न्यास मंडल में, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति (अमेरिका) के कवि सम्मेलनों की राष्ट्रीय संयोजक. 'प्रथम' शिक्षण संस्थान की कार्यकारिणी सदस्या एवं उत्पीड़ित नारियों की सहायक संस्था 'विभूति' की सलाहकार. अमेरिका से भारत के बहुत से पत्र-पत्रिकाओं एवं वेब पत्रिकाओं के लिए लेखन. इंडिया आर्ट्स ग्रुप की स्थापना कर हिंदी के बहुत से नाटकों का मंचन कर लोगों को हिंदी भाषा के प्रति प्रोत्साहित किया. अनगिनत कवि सम्मेलनों का सफल संयोजन एवं संचालन. रेडियो सबरंग (डेनमार्क) की संयोजक. टी.वी., रेडियो एवं रंगमंच की प्रतिष्ठित कलाकारा.

पुरस्कार/ सम्मान : अमेरिका में हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं सामाजिक कार्यों के लिए वाशिंगटन डी.सी. में तत्कालीन राजदूत श्री नरेश चंद्र द्वारा सम्मानित ; चतुर्थ प्रवासी हिंदी उत्सव २००६ में 'अक्षरम प्रवासी मीडिया सम्मान.'; हैरिटेज सोसायटी नॉर्थ कैरोलाइना (अमेरिका) द्वारा 'सर्वोत्तम कवियत्री २००६' से सम्मानित; ट्राईएंगल इंडियन कम्युनिटी, नार्थ-कैरोलाइना द्वारा २००३ नागरिक अभिनंदन; हिंदी विकास मंडल, नॉर्थ कैरोलाइना, हिंदी सोसायटी, नार्थ कैरोलाइना; अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति (अमेरिका) द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं सामाजिक कार्यों के लिए कई बार सम्मानित.

शहर में पढ़ता था और वहां से वह अखबार लेकर आता और पूरे गांव को खबरें सुनाया करता था. माले के घर में रेडियो भी था, जहां शाम को सारा गांव खबरें सुना करता. गांव में वही ऐसा घर था, जिसके लोग पढ़े-लिखे और अच्छा खाते-पीते थे.

बापू गांधी को जब गोली लगी थी, तो पूरा गांव चुप हो गया था. जवाहरलाल नेहरू के सत्ता में आने के उपरांत लोगों में एक आशा जागृत हुई थी, पर उनकी योजनाएं समर्थ किसानों को ही सुख दे पायी थीं. उसके बापू जैसे गरीब किसान को तो उनका पता ही नहीं चला. वे तो गुडकू लाला की ही दया-दृष्टि पर निर्भर करते थे. थोड़ा बड़ा होने पर उसने माले के भाई से ही सुना था, कि कोई मशीन है जो बैलों की जगह खेतों में तेजी से काम करती है और उसकी आंखें खुली

रह गयी थीं. उसे तो बहुत बाद में पता चला था कि उस मशीन को ट्रैक्टर कहते हैं और वह उनकी पहुंच से बाहर था. इस गरीबी से निकलना भी उसकी पहुंच से बाहर था....

‘बख्शंदर का भला हो, जिसकी बदौलत आज मैं यहां तक पहुंचा हूं.’ वह अंधेरे में हल्की सी रोशनी की किरण को देख कर बोल रहा था, जो अपने प्रियतम के आगमन से पहले सारी सृष्टि को सचेत कर रही थी.

बख्शंदर उसके गांव का लंबा-ऊंचा पहला नौजवान था जो बाहर नौकरी करने गया था. समुद्री जहाज़ पर काम करता था. साल में या कभी दो-तीन साल में एक बार वह गांव आता और दिल खोलकर पैसा खर्च करता. वह उससे बहुत प्रभावित था और बख्शंदर की तरह पैसा कमाना चाहता था.

एक बार वह बख्शंदर से मिला- ‘भाजी, मैं भी आप की तरह पैसा कमाना चाहता हूं.’ उसने साहस बटोर कर कहा था.

बख्शंदर ने मुस्करा कर उसकी तरफ देखा था- ‘पैसा कमाना आसान नहीं है, मुड़िया. हम अनपढ़ लोग हैं. सब कुछ लुटाना पड़ता है, अपना अहम, अपनी होंद मिटानी पड़ती है.’

‘हर तरह की चुनौती के लिए तैयार हूं जी, पर मुझे अपने साथ ले जाओ.’ बड़े आत्मविश्वास से उसने कहा था.

बख्शंदर ने उसे टालते हुए कहा था - ‘जा अपने बापू की रज़ामंदी ले आ.’

ज्योंही, उसने बख्शंदर के साथ जाने की बात, घर में बतायी, उसके बापू ने डंडा पकड़ लिया और उस दिन उसे बहुत पीटा था. बदन पर पड़ते हर डंडे के साथ, गालियां भी सुनने को मिलीं - ‘हरामदा, खेतां विच तैथों कम नहीं हुंदा. समुद्री जहाज़ ते मज़दूरी करेगा, ओये कंजरा, मज़दूर नालों किसान दी इज़्जत ज्यादै.’ (हराम के, खेतों में तेरे से काम नहीं होता, समुद्री जहाज़ पर मज़दूरी करेगा, ओये कंजरा, मजदूर से किसान की इज़्जत ज़्यादा है.)

‘बापू किस इज़्जत दी गल कर दें, घर तां दो वेले दी रोटी वी खान नूं नहीं.’ (बापू किस इज़्जत की बात करते हो, घर में तो दो वक्त की रोटी भी खाने को नहीं) बस मोणे (घर में उसे इसी तरह बुलाया जाता था) का

इतना कहना था, कि बापू के डंडे उस पर ताबड़-तोड़ पड़ने लगे. बापू अपनी निराशा, बेबसी, असमर्थता, क्रुर्ज के बोझ के गुस्से को, उसके बदन पर निकाल रहा था. वह चीखता-चिल्लाता रहा, बापू उसे पीटता रहा और मार-मार कर जब वह हांफने लगा, तो बाहर चारपाई पर जा बैठा.

बहनों और मां ने कई बार उसे बचाने की कोशिश की, उन पर भी बापू के डंडे बरसे और वे रोती हुई घर के कोनों में दुबक गयीं. मोहन सारी रात दर्द से तड़फता रहा, बहनें रात भर, गर्म ईंट से मार की चोटों पर सिंकाई करती रहीं. उस रात उसने सोच लिया था कि वह इस गांव और घर से दूर चला जायेगा, यहां रहा, तो इसी तरह, पिटते-पिटते मर-मिट जायेगा.

इस घटना की याद ने मोहन के बदन में झुरझुरी पैदा कर दी. वह उस पीड़ा को, आज फिर महसूस कर रहा था. ये चोटें, शरीर से ज़्यादा, उसकी आत्मा पर लगी थीं. कई दिन, वह अपने दर्द भरे शरीर को घसीटता रहा था. उसकी किस्मत अच्छी थी. बख्शंदर कुछ दिनों बाद ही, गांव लौट आया. इस बार उसने आते ही, मोहन से संपर्क किया, वह उसके दृढ़-आत्मविश्वास से प्रभावित हुआ था.

‘मोणे, अमरीका चलेगा?’

‘मुझे कौन अमरीका लेकर जायेगा?’

‘मैं और कौन?’

‘भाजी, आप तो समुद्री जहाज़ पर काम करते हैं?’

‘अरे वहीं पर, मुझे अमेरिका के यूबा सिटी का, एक जर्मीदार सरदार बिशन सिंह दोसांज़ मिला था. उसे खेतों में काम करने के लिए कुछ कामगार चाहिए. अमरीका जाने के लिए ही तो मैं समुद्री जहाज़ पर काम कर रहा था. अब मैं हाथ में आया मौका गंवाना नहीं चाहता, चलेगा मेरे साथ. दो जने होंगे, तो दुःख-सुख बांट लेंगे.’

‘भाजी, मैं तो तैयार हूं, पर बापू को इसके बारे में ना बतायें.’

‘ओये डर ना, मैं कुछ नहीं बताने वाला, मुझे पता चला है, तेरे साथ क्या हुआ.’

‘पर पासपोर्ट, वीज़ा इन सब का खर्चा, मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं है!’

‘मोणे, तू चिंता न कर, लैंड लॉर्ड सब कुछ करेगा, हमने अपना कपड़ा-लता लेकर, उसके साथ चले जाना है.’

मोहन बहुत खुश था, उसे इसी दिन का इंतज़ार था. पर उसने इस प्रसन्नता को, अपने भीतर ही दबाये रखा. अपनी मां-बहनों तक को इस बात का एहसास नहीं होने दिया.

एक दिन छोटी बहन ने मोहन को छेड़ा भी – ‘वीर जी, आज कल आप, बड़े खिले-खिले रहते हैं, गांव की कोई मुटियार पसंद आ गयी.’

वह सचेत हो गया था, कहीं चोरी पकड़ी ना जाये – ‘चुप, छोटा मुंह बड़ी बात, वैसे कोई खिल नहीं सकता. मुटियार बीच में कहां से आ गयी?’

‘पर वीर जी, कोई बात तो है, मैंने आप को इतना उत्साहित पहले कभी नहीं देखा.’

वह स्नेह से उसके सिर पर हाथ रख, बिना कुछ कहे, वहां से चला गया और छोटी देखती रह गयी थी....

देखता तो वह भी रह गया था अपने गांव को. एक रात दोनों ने चुपचाप उसे और अपने परिवार को छोड़ दिया था. बस साथी मुख्तियार को बता दिया कि उनके जाने के बाद, वह उनके घर वालों को सूचित कर दे. उसे अमेरिका जाने और पैसा कमाने की धुन और उत्साह तो था, पर साथ ही गांव छोड़ने और अज्ञात भविष्य का डर भी था.

उसकी आंखें और गला भर गया. अमेरिका आने के दस साल बाद तक वह अपनों को देख नहीं पाया. वह अपनी मां और बहनों को बहुत प्यार करता था, उनकी याद कभी-कभी उसे उदास कर जाती, पर वे यादें ही, उसे हिम्मत भी बंधा देतीं. वह उनके लिए जी तोड़ मेहनत करना चाहता था. उन्हें अच्छी जिंदगी देना चाहता था. बापू का कर्जा उतार कर उसे स्वाभिमानी किसान बनाना चाहता था, जो किसी के आगे हाथ न फैलाये. भारत आने-जानेवालों के हाथ, वह उनको चिट्ठी-पत्री और कुछ पैसे भेज देता था. सीधा संपर्क और पत्र-व्यवहार तो ज़मींदार के द्वारा ही होता था, जिससे वह हर बात खुलकर नहीं कर सकता था. अमेरिका आने के कुछ समय बाद, उनके वीजा की अवधि समाप्त हो गयी थी. कई बार उस अवधि को

बढ़ाया गया, फिर वह भी संभव नहीं रहा. अवैध रूप से छिप कर वे रहने लगे थे, ज़मींदार ने उन्हें अपने खेतों में बने कमरों में स्थान दे रखा था. कई साल उन्होंने अनथक मेहनत की. मालिक उन्हें बहुत कम वेतन देता और दस गुना काम लेता था, उसमें से ही पैसा बचा कर, वह भारत भेजता था.

पुलिस सायरन की आवाज़ सुनते ही, वे फसलों में छिप जाते थे ‘ग्रीन कार्ड’ के बिना अमेरिका में रहना गैरकानूनी है. बखिंदर और उसकी कई बार बहस हुई थी, कि इज़्जत के साथ काम करने और रहने के लिए ग्रीन कार्ड ज़रूरी था, अन्यथा पकड़े जाने पर, उन्हें भारत वापस भेजा जा सकता था. पर ग्रीन कार्ड वे लें कैसे? यह प्रश्न उनके सिर पर मंडराता रहता था. वे जानते थे, कि ज़मींदार के द्वारा तो ग्रीन कार्ड मिल नहीं सकता था, उसे तो सस्ते श्रमिक चाहिए थे. वे बेहद मेहनती और ईमानदार हैं, पर ग्रीन कार्ड मिलने के बाद, वे कम पैसे और एक वेतन में पांच मजदूरों का काम नहीं करने वाले थे, यह वह अच्छी तरह जानता था. अभी तो मजबूरी में वे सब कर रहे थे, इसलिए वह उनके ग्रीन कार्ड को लेकर चुप्पी साथे था. पढ़े-लिखे वे थे नहीं कि विद्यार्थी बन जाते या किसी कंपनी में नौकरी करते और वह कंपनी उन्हें ग्रीन कार्ड दिलवा देती. वे दोनों ही साहसी, कर्मठ और समझदार नौजवान थे. वहां से निकलने के रास्ते ढूंढने लगे.

अमेरिका की लड़की से शादी करके ग्रीन कार्ड जल्दी और आसानी से मिल सकता था. पर यूबा सिटी में उनके लिए यह भी संभव नहीं था. यूबा सिटी कैलिफोर्निया प्रदेश का हिस्सा है. कैलिफोर्निया में मैक्सिकन लोगों की भरमार है. यह पहले मैक्सिको का ही हिस्सा था. ज़मींदार उन्हें इतना व्यस्त रखता था कि काम के बाद उनके पास समय ही नहीं बचता था, जो वे कोई लड़की ढूंढ सकते. ज़मींदार से चोरी-छिपे, मैक्सिकन साथी मजदूरों से बखिंदर ने ग्रीन कार्ड लेने की बात चलायी और उसकी कीमत चुकाने की तरफ इशारा भी किया. बहुत से पुराने श्रमिकों ने इसी तरह ग्रीन कार्ड लिये थे. सारी बातचीत संकेतों और कम बोलचाल से ही तय हुई थी. बिशन सिंह के सुपरवाईज़र की उन पर हर समय नज़र रहती थी. पर उनके पास तो पासपोर्ट नहीं थे. वे तो बिशन सिंह

दोसांझ ने अपने पास रखे हुए थे और वह ही उन पर वीजा लगवाने भेजता था. अब वे क्या करें?

कई दिन विचार-विमर्श चलता रहा. अंत में मोहन ने बिशन सिंह से बात करने की सोची, वह जानता था कि मालिक से पासपोर्ट लेना आसान नहीं होगा. वह बखिंदर से ज़्यादा निडर और जोखिम उठानेवाला नौजवान था.

सोचकर ही उसके चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी, बड़ा दमदार था वह, दोसांझ की आंखों में आंखें डालकर बोला था...

'सर जी, हमारे पासपोर्ट हमें वापिस कर दीजिए.'

'क्यों?' बिशन सिंह की रौबदार आवाज़ हवा में लहरायी.

'हम सब और इस तरह नहीं रह सकते, हमें वापिस जाना है.'

'वापिस जाना या ग्रीन कार्ड लेना है.'

'ग्रीन कार्ड कहां से लेंगे जी.'

'मैं अगर पासपोर्ट ना दूं तो?'

'हम पुलिस के पास चले जायेंगे.'

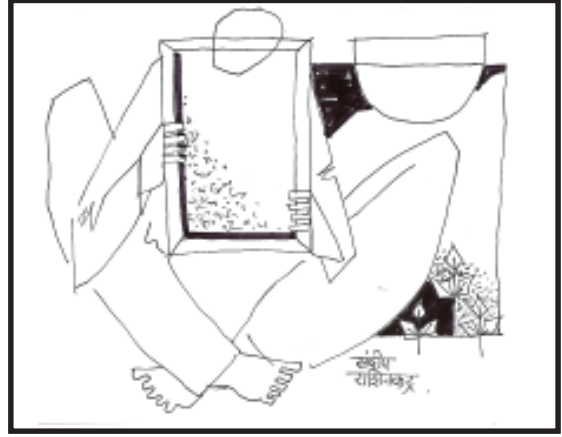
'जानते हो, फिर क्या होगा?'

'जो होगा, देखा जायेगा, हम तो कंगले, फटेहाल मजदूर हैं. एक जेल से छूट, दूसरी में जा बैठेंगे जी, कम से कम आराम की रोटी तो खायेंगे, या वे हमें भारत भेज देंगे. नुकसान तो आप का होगा जी, कई राज़ खुल जायेंगे, कई केस बनेंगे, कई कामगार डिपोर्ट होंगे.'

'मुझे ब्लैक मेल कर रहे हो.'

'आप जो समझना चाहते हैं, समझ लें. हम पर आप का एक कर्ज़ था, यहां लाने का, वह हम कई सालों से चुका रहे हैं.'

दोसांझ सोच में पड़ गया... भारत में होता, तो इसको कब का ठीक कर लेता, पर अमेरिका में एक सीमा तक ही मनमानी कर सकते हैं, उसके बाद कानून की ऐसी लक्ष्मण रेखा खिंची होती है, जिसका कोई रावण भी उल्लंघन नहीं कर सकता. उसकी समझ में आ गया था, कि नौजवान का खून खौल चुका है. यह सिरफिरा कुछ भी कर सकता है, अगर यह कानून की शरण में चला गया, तो वह तबाह हो जायेगा. इसके पास गंवाने के लिए कुछ नहीं, पर वह लुट जायेगा, उसने पासपोर्ट वापिस देने में ही बेहतरी समझी और



कई वर्ष, वह उससे कड़ी मेहनत करवा चुका था, अपने पैसे और इस देश में लाने की वसूली भी कर चुका था. उसने मोहन का पासपोर्ट लौटा दिया.

'सर जी, बखिंदर भाजी का पासपोर्ट.'

'वह खुद आकर ले जाये.'

'मैंने दोनों के पासपोर्ट मांगे थे, सिर्फ अपना नहीं.'

दोसांझ ने उसकी ओर घूर कर देखा और दूसरा पासपोर्ट उसकी तरफ फेंक दिया.

पासपोर्ट मिलने के कुछ दिन बाद, एक मैक्सिकन, दो लड़कियों को लेकर आया. उस आदमी से बखिंदर पहले ही बात कर चुका था. पांच हजार डॉलर बहुत बड़ी रकम थी. चारपाई पर बैठे मोहन सिंह के आगे सब यादें चल चित्र की भांति चल रही थीं. उन्होंने कुछ पैसे अपने पास से और कुछ दोस्तों से उधार लेकर उस मैक्सिकन को दिये थे. कोर्ट में जाकर कागज़ी शादी हुई थी और फिर लड़कियां अपने घर चली गयीं.

जिस दिन ग्रीन कार्ड मिला था, दोनों दोस्तों ने खूब जम कर शराब पी थी और धुत होकर नाचे थे - 'पी के शराब जट ने जद बुडका मारिया, बाहमनी कोठरी विच जा छिपी.' वे भांगड़े की बोलियां बोल-बोल कर नाचे थे. ग्रीन कार्ड मिलने के कुछ महीने बाद, कोर्ट में जाकर, आपसी समझौते से, उन दोनों ने तलाक ले लिया था. तत्कालीन प्रेज़िडेंट जॉन एफ कैनेडी को गोली उन्हीं दिनों लगी थी और अमेरिका में राजनीतिक असुरक्षा का दौर था. आप्रवास के नियम सख्त नहीं थे, जितने अब हैं, आतंकवादी हमलों के बाद. उनका सब काम आसानी से, अधिक पूछताछ के बिना हो गया था.

ग्रीन कार्ड मिलने के बाद, लैंड लॉर्ड का व्यवहार भी, उनके प्रति बदल गया. अमरीका के नियमानुसार उसने उनकी पगार बढ़ा दी और अमानवीय बर्ताव भी बंद कर दिया. उसे भी पता था, कि अगर उसने अपना आचरण ना बदला, तो वे दोनों उसे छोड़ जायेंगे. कई दूसरे ज़मींदारों की उन पर नज़र थी, वे दोनों बहुत अच्छे, सच्चे और खून पसीना बहाने वाले मजदूर थे.

भारत जाने से पहले वह पैसा जोड़ना चाहता था, उसने रात-दिन एक कर दिया. खेतों में काम करने के साथ-साथ, कोका कोला की फैक्ट्री में नाइट शिफ्ट काम किया. सप्ताहांत ग्रॉसरी स्टोर में काम किया. दो-दो नौकरियां करके, उसने पैसा जोड़ा. बापू का कर्जा उतारना था, बहनों की शादी करनी थी. सुखद भविष्य को वह देखने लगा था.... लहराते खेतों में खड़ा बापू, खूंटों से बंधे बैल, कोने में ट्रैक्टर, घर में गायें, दूध, दही, लस्सी की बहारें, मां के हाथों में गोखट्टू, बहनों के उजले कपड़े.

बख्श्यादर बहुत आज़ाद हो गया था. वह नाइट क्लबों और पबों में जाने लगा. वहीं उसे, एक अमेरिकी लड़की से प्यार हो गया और उसने उससे शादी कर ली. दस साल बाद, वे दोनों अपने गांव साहनेवाल गये. ढोल बजाता बापू, मोहन को लेने आया था. उसके कानों में ढोल की थाप गूंजने लगी. 'कई पुरानी यादें भी कितनी मधुर होती हैं.' कहते हुए उसका चेहरा उगते सूरज की ओर देखते हुए चमक उठा. उसके परिवार ने अपनी ही बिरादरी की यू. पी. में जन्मी-पली जसबीर से उसकी शादी कर दी.

शादी के बाद तो उसका जीवन ही बदल गया. जसबीर पढ़ी-लिखी थी, उसने मोहन के साथ घर और बाहर संभाल लिया. किसान का बेटा, उपजाऊ ज़मीनों को ढूंढता रहा और जसबीर उनके लिए पैसा जुटाती रही. उसने घर में नौकरी पेशा औरतों के बच्चे रखने का एक डे-केयर खोल लिया था, उन बच्चों के साथ ही उसके अपने बच्चे भी पलने लगे.

□

गोली मारकर मार्टिन लूथर किंग की हत्या कर दी गयी थी, उससे पनपी राजनीतिक उथल-पुथल ने सामाजिक और आर्थिक ढांचे को हिला दिया था. खेती-बाड़ी की ज़मीन बहुत सस्ती हो गयी थी. उस समय उसने काफी ज़मीन खरीद ली और वह अमेरिका का किसान सरदार मोहन सिंह हो गया, तीन बेटों और दो

बेटियों का बाप, सौ एकड़ ज़मीन का मालिक. चार मंजिला घर है जिसका, गैराज में महंगी कारें खड़ी हैं, बेटों के दो गैस स्टेशन और दो मोटल हैं.

उसका विवेक जाग उठा.... सूखा तो यहां भी होता है, बारिशें फ़सलें खराब कर देती हैं, अंधड़ खड़ी फसलें उखाड़ देते हैं, पर ऐसे में सरकार मदद करती है. बड़ी-बड़ी कंपनियां सहायता करती हैं और अमीर लोग अनुदान देते हैं. भारत में कोई उनकी मदद क्यों नहीं करता? फिर बुद्धि ने विवेक से बात की... ज़रूर करते होंगे.... भारत सरकार समृद्ध है और देश में बहुत से अमीर घराने हैं. कई संस्थाएं किसानों के लिए काम कर रही हैं, पर वहां की अवस रचना इतनी भ्रष्ट है, कि सब सहायता रास्ते में ही रह जाती है.... ग़रीब किसान तक पहुंच ही कहां पाती है.... अमीर किसान या बीच के लोग ही वह सब ले जाते हैं, ग़रीब किसान को तो उनका पता भी नहीं चलता. जब तक देश की व्यवस्था और ढांचा भ्रष्ट है, तब तक किसान मरता रहेगा. गले में फंदा डलता रहेगा.

जसबीर की बात याद आती है – दार जी, परदेस के माल-पूड़ों की बजाये देश की सूखी रोटी भली. बहुत पैसा कमा लिया. चलो अब लौट चलें, बच्चों को यहां रहने दें, हम वहां जा कर खेती-बाड़ी करेंगे.'

'कहां खेती-बाड़ी करेंगे जसबीर कौरे, जहां मेरे किसान भाई, मेरी बिरादरी के लोग ज़हर खा रहे हैं, गले में फंदा डाल रहे हैं, अपनी पत्नियां तक बेच रहे हैं.' वह दुःख के सागर में डूबने लगा, उसमें गहरे उतरता गया, उसे महसूस होने लगा कि ज़हर उसके गले में है और फंदा कसता जा रहा है, उसका शरीर ढीला हो रहा है...आंखें बाहर आ रही हैं, वह अपने आप को मरता देख रहा था.

जसबीर की आवाज़ ने उसे चौंका दिया – 'दार जी, प्रभात वेले से आप यहां बैठे हैं, आप की तबियत तो ठीक है? किसी को बुलाऊं कि आप को डॉक्टर के पास ले जाये.'

मोहन सिंह की तंद्रा टूटी, उसका हाथ अपने गले पर गया. सब कुछ ठीक था....

 101, Guymon Ct.,

Morrisville, NC-27560 USA.

(R)- 919-678-9056, (M)- 919-801-0672

e-mail : sudhadrishti@gmail.com

कथाबिंब/ जुलाई-सितंबर २०१० ।।१२।।

“पिताजी, चिंता न करें !”

तब मैं ग्यारह-बारह साल का रहा होऊंगा. पांचवी कक्षा में पढ़ता था. नीलू दस साल की थी, उससे छोटा संतू सात साल का था. वे दोनों पास के सरकारी स्कूल में पढ़ते थे जहां फ़ीस नहीं लगती थी. मैं चौराहे के आगे वाले इंग्लिश स्कूल में पढ़ता था. फ़ीस सौ रुपये थी, लेकिन मेरी आधी फ़ीस माफ़ थी.

घर में पिताजी हमेशा मां पर बिगड़ते, कि वह लापरवाह और फिजूलखर्च हैं. मां कहा करतीं कि किस तरह घर चला रही हैं, वह जानती हैं. पिताजी महंगाई को कोसते, और गुस्सा मां पर उतारते. मां के साथ हम लोगों की सहानुभूति थी.

मुझे मालूम था, पिताजी एक कारखाने में फोरमैन हैं. कभी-कभी मां का संदेश लेकर वहां जाना पड़ता था. मुझे वहां जाना अच्छा लगता. बाहर सजे-धजे ऑफिस में बड़ी सी पगड़ीवाले सरदारजी बैठे रहते थे. मुझे देखकर मुसकराते, बुला कर पीठ ठोकते, और मेज से निकाल कर एक चॉकलेट देते थे.

उस दिन शाम पिताजी जल्दी घर लौट आये. मैं खेल कर लौटा ही था, उनकी झल्लाई आवाज़ सुन पड़ी. फिर वह बाहर वाले अपने कमरे में चले गये. हम भाई बहन घबरा रहे थे. रात में मां ने हमें खाना खिलाते समय बताया कि पिताजी की नौकरी छूट गयी है, वह परेशान हैं. हम उन्हें तंग न करें. हम लोग कई दिनों से कह रहे थे कि वे हमें पार्क में लगा मेला दिखाने ले जायें. उन्होंने दिखाने का वादा भी कर लिया था. नीलू और संतू पता नहीं, क्या समझे, लेकिन मेरी समझ में झट आ गया, कि नौकरी नहीं, तो मेला वगैरह नहीं, स्कूल फ़ीस के पैसे भी नहीं. न कॉपियां, न जेब खर्च. शायद हमें भोजन भी न मिल सके. मन में डर की एक छाया आ गयी. रात देर से नींद आयी.

सबरे रोज़ पिताजी तैयार होने की हड़बड़ी में रहते, जल्दी नाश्ता कर कटोरदान में पराठे लेकर साइकिल से चल देते. आज बाहरी कमरे में चुप बैठे खिड़की के बाहर देखते दांत खोद रहे थे.

नाश्ते के समय मां ने पिताजी को भी बुलाया, किंतु उन्होंने मना कर दिया कि कुछ खाने का मन नहीं

हैं. मां के जिद करने से आये, हमें उनके साथ खाते हुए अजीब लग लग रहा था. एक रोटी ही खा कर उठ गये. स्कूल का सबक बनाते मुझे उनकी आवाज़ सुन पड़ी, “सब बेवकूफी, और क्या?”

मां की आवाज़ आयी, “आखिर क्यों जा रहे हैं?”

“जालंधर के रहनेवाले हैं. घर की हुड़क आ गयी.

ऐसा जमा-जमाया कारखाना, सब ले जायेंगे. कई टूक बुलाये गये हैं. कहते हैं, राय जी, हमारे साथ चलिए. रहने-सहने का इंतजाम हो जायेगा, वेतन भी बढ़ा देंगे. चाहें तो परिवार को भी ले चलें...

“वाह जी,” मां की आवाज़ तुरंत आयी, “हम क्यों पंजाब जायेंगे. नाते-रिश्ते हित-मीत सब यही हैं, मेरा मायका है....”

“वही तो, मना कर दिया. अब कहीं और नौकरी खोजनी होगी.”

“आपको इस महीने का वेतन तो मिला होगा?”

॥ चंद्रमोहन प्रधान ॥

“मिला है, मैंने आते समय परचून वाले का पिछला हिसाब सब साफ़ कर दिया है. अब वह उधार देता रहेगा!”

“कारखाने बहुत हैं, आपको अनुभव है. काम मिलेगा ही.”

मैं स्कूल से लौटा, तो पिताजी नहीं थे. रात में थके हुए लौटे, तो मां से उनकी बातचीत सुन कर समझ गया, काम नहीं मिला है. बीच में वह जोर से बोलने लगे थे, “जरा सोचो, कहीं फोरमैन की जगह खाली नहीं है, काम मिल रहा है तो फिटर या खराद का. उपेंद्रनाथ राय लेथमैन बनेगा, जो पंद्रह साल पहले छोड़ दिया.”

“तो क्या हुआ, पैसे तो मिलेंगे. फिर अच्छी जगह खोज....”

“तुम औरतों को तो बस, पैसे की सूझती है. आदमी का कुछ स्टेटस होता है....”

पिताजी ने कोई काम नहीं पकड़ा. हमारे खाने-पीने में तो कमी नहीं आयी, लेकिन फ़ीस, दूध, जेब

खर्च गड़बड़ाये, कटौती होने लगी. मां ने झल्ला कर कहा, “आप अपना स्टेटस लिये बैठे रहें, बच्चों को दूध नहीं मिलता. स्कूल की फ़ीस....”

“तो लेथ पर काम करने लगूं?” पिताजी गुर्राये, लेकिन आवाज़ में वह खनक नहीं थी. शाम को मां ने ही मुझसे पिताजी के लिए सिगरेट की डिब्बी मंगवायी और सुबह स्कूल की फ़ीस दे दी. तब मुझे पता लगा, कि पिताजी के पास पैसे नहीं हैं.

उस दिन रात हम लोग पढ़ रहे थे तो मैंने नीलू से कहा, “हमें कुछ काम करना चाहिए. ताकि पिताजी को मदद मिले.”

नीलू समझ रही थी. बोली, “हम लोग तो छोटे हैं, क्या कर सकते हैं.”

“मैं अपनी कहानियों की किताबें बेच दूंगा. उधर गली में रद्दी बेचने-खरीदनेवाला ले लेगा.”

नीलू उत्साहित हुई, “मैं शोभा को अपनी पेंटिंग बेच दूंगी, वह कई बार मांग चुकी है. चाहे जितने में ले ले.”

नीलू चित्र अच्छे बनाती थी. उसकी ड्राईंग कॉपी सुंदर रंगीन चित्रों से भरी थी. फूलों के गमले, मछली, मंदिर, झूला झूलती लड़कियां, कार, पेड़ के नीचे झोपड़ी आदि.

संतू ने कहा, “हम भी बेचेंगे.”

“तुम क्या बेचोगे भला?” नीलू ने उसकी खिल्ली उड़ायी. संतू ने कहा, “हम अपनी घड़ी बेच देंगे.”

“नीलू,” मुझे एक बात सूझी, “तीन दिन बाद से गर्मी की छुट्टी होगी. उस दिन स्कूल में बाल मेला लगेगा. मैं कूट के ढेरों सामान बनाऊंगा, घर, गुड़िया घर, गमले में कागज के रंगीन फूल, कार, हवाई जहाज़.... तुम पेंटिंग खूब बना लेना. शोभा को कहना, अपना वह पापड़-तिलौरी, भुनी-मूंगफली वगैरह का स्टॉल लगायेगी. हम लोग भी स्कूल में बाल मेला लगायेंगे. खूब बिक्री होगी, काहे?”

“वाह!” नीलू उत्साह से बोली.

“वाह! खूब बिक्री होगी.” नीलू खुश हो गयी. उसे मालूम था मुझे कूट, रंगीन कागज काट कर तरह-तरह की चीजें बनाने का शौक है. संतू बार-बार अपनी घड़ी की बात कह रहा था. उसकी घड़ी असल में, वह एक बहुत पुरानी बड़ी सी टूटी मेज घड़ी थी. उसका पिछला ढक्कन गायब था, और भीतर के कलपुर्जों के अंजर-पंजर खुले थे. संतू का प्रिय खेल था उन्हें देखना-छेड़ना. उसने पीछे से पेंच घुमाकर सुइयों को हिलाना भी सीख लिया था. ऐसी प्रिय चीज को वह बेचने को तैयार था, हमारी होड़ में.

“संतू,” मैं बोला, “ऐसी अच्छी घड़ी काहे बेचना चाहते



चन्दन प्रधान

जन्म : १९३९, मुजफ्फरपुर (बिहार);
(१९४४-४८ से पूर्णरूप से बधिर)

लेखन : १९६३ से ‘मुक्ता’, ‘सरिता’ से लेखन आरंभ. अनंतर ‘धर्मयुग’, ‘सारिका’, ‘सारिका’, ‘हंस’, ‘ज्ञानोदय’ आदि सभी शीर्षस्थ पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित.

प्रकाशन : ‘एकलव्य’ (उपन्यास) व ‘जिस गांव नहीं जाना’, ‘रिश्ते’ तथा ‘शहर पिघल रहा है’ (सभी कहानी संग्रह) प्रकाशित.

अन्य : १९६६ से विभिन्न शिक्षा संस्थानों से शिक्षा प्राप्त की. अनेक सामाजिक संगठनों से जुड़ाव.

विशेष : १९९९ में कैलीफोर्निया (अमरीका) में चार माह तक प्रवास, वहीं की हिंदी पत्रिका ‘विश्व विवेक’ में सपरिचय कहानी का प्रकाशन.

सम्मान : वर्ष २००४ में ‘बिहार राष्ट्रभाषा परिषद’ का सर्वोच्च साहित्य सम्मान प्राप्त, अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित/पुरस्कृत.

हो. फिर खेलोगे किस से. कोई दो-चार रुपये से ज्यादा न देगा.”

उसे उदास देख, नीलू ने फुसलाया, “तुम इस बार छोड़ दो संतू. जब छुट्टी में बाल मेला लगायेंगे, तो मेरी दुकान पर तुम्हीं सब काम संभालना, ऐ?”

संतू खुश हो गया. उसे हम लोगों ने बार-बार चेताया कि मां से हरगिज़ न कहे, वरना कुट्टी. संतू ने होंठ चांप लिये, जैसे मुंह से बात नहीं निकलने देगा

अगले दिन शनिवार को, मैंने रद्दी वाले के हाथों अपनी अधिकतर कहानी तथा कोर्स की पुरानी पुस्तकें, कुछ बाल पत्रिकाएं सब बेच दीं. बेचते समय मन में कलक तो हुई, लेकिन पिताजी को मदद देनी अधिक जरूरी थी. रद्दी वाला बूढ़ा हुज्जती था, उसने छह रुपये किलो के भाव से तौल कर मुश्किल से अठारह रुपये दिये. मैं जानता था, पुराने अखबार सात रुपये किलो बिकते हैं, ये तो किताबें थीं. मैं छपे दाम से आधे दाम में देना चाहता था, बूढ़े को समझाया भी, लेकिन

कथाबिंब/ जुलाई-सितंबर २०१० ।।१४।।

वह न माना. गिन कर नहीं, तौल कर ही किताबें लीं.

नीलू की सहेली शोभा ने पेंटिंग अपनी पढ़ने की मेज के पास दीवार पर सजाने को खरीद लीं, दस रुपये में. बोली, पैसा कुछ दिन बाद देगी. जब नीलू ने उसे बताया कि हमें पैसों की तुरंत जरूरत है, तो वह हमारी मदद करने अपनी मां से कलर बॉक्स के बहाने दस रुपये मांग लायी, यों हमारे पास अठाइस रुपये हो गये. पिताजी खुश होंगे. नीलू के पास रुपये जमा करा दिये गये. उसने खूब छिपा कर अपने ज्यॉमेट्री बॉक्स में रख लिये.

□

दो दिन मैं मेहनत करता रहा. हमने अपनी पढ़ाई-लिखाई में कमी नहीं आने दी, ताकि मां टोके नहीं, और बाकी फुर्सत का सारा समय हम लोग अपने सामानों की तैयारी में लगाते. मेरे पास कूट वगैरह तो थे ही, काट कर कारें, एक बस, एक ट्रक, दीवार घड़ी आदि बनायीं. दो छोटे-बड़े घर. एक गुड़िया घर, कुछ रंगीन कागज के गुलदस्ते! नीलू पेंटिंग बनाने में व्यस्त रही. संतू को हम लोग बार-बार चेताते, चुप रहे, वरना मेले में स्टॉल लगाने का प्रोग्राम ही चौपट हो जायेगा....

मां को किसी बात का पता लगने नहीं दिया. हम लोग यह सब चुपके करते रहे. स्कूल की छुट्टी के दिन वहां बाल मेला लगा. मैंने अपने नाम से स्टॉल की जगह ले ली थी. मेरे वर्ग शिक्षक गुप्ताजी ने एक अच्छी जगह मुझे दिला दी. नीलू की सहेली शोभा ने भी अपना नमकीनों का स्टॉल वहीं लगाया. संतू को भार दिया गया, वह नाश्ता करनेवालों को ग्लास में पानी पिलायेगा. नयी जिम्मेदारी से वह बहुत खुश था.

दस बजे से मेला लगा. गर्मी की छुट्टी आज से ही हुई, सो छात्र उत्साहित थे. बड़ी-भीड़ हो गयी, स्टॉलों पर खूब बिक्री हुई. मेरे, नीलू और शोभा के स्टॉल पर सबके लिए बड़ा आकर्षण था. लड़कियां खूब चटपटे पापड़, चॉप आदि खा रही थीं, संतू खुश हो सबको पानी पिला रहा था. वह तिकोनी कागज की रंगीन टोपी भी लगाये था, जो उसके जन्मदिन पर हम सबने पहनी थी. नीलू ने एक कार्ड बोर्ड पर सुंदर अक्षरों में लिखकर टांग रखा था, "सुंदर खिलौनों, चित्र, स्वादिष्ट जलपान के लिए पधारें....."

दोपहर तक मेरा सब सामान बिक गया. नीलू की दो पेंटिंग बच रहीं, जिन्हें शोभा ने खुद खरीद लिया. वह भी अपनी बिक्री से बहुत खुश थी.

तीसरे पहर हम लोग घर लौटे. मेरी जेब में पूरे एक सौ सत्रह रुपये की राशि थी, मैं उत्साह में भरा था.

नीलू को प्रति पेंटिंग पांच, और छह सात रुपये के हिसाब से छियासठ रुपये मिले थे. संतू को शोभा ने नाश्ता कराया था और दस रुपये भी दिये थे. वह भी मगन था.

घर लौट कर मैंने अपनी, नीलू की और पहले किताबें बेच कर मिली राशि जोड़ी, दो सौ ग्यारह. संतू को मिले दस रुपये जोड़ कर दो सौ इक्कीस होते थे. नीलू ने समझाया, "संतू, तू रुपये लेकर क्या करेगा, हमारे पैसों में मिला दो..."

लेकिन संतू नहीं माना. बोला, "वाह, हम अपना रुपया खुद मां को देंगे...."

□

शाम को पिताजी घूम-फिर कर थके मां से वापस लौटे. मां ने चाय बना दी. हम तीनों मां के पास गये. वह चौंके में बैठी थी. संतू उनकी गोद में चढ़ गया, बोला, "मां, हम लोग पैसा लाये हैं." उसने अपना वाला दस रुपये का नोट मां को थमा दिया.

नीलू ने डांटा, "तू सब पैसे लाया है? झूठा! मां, यह लो, दो सौ ग्यारह रुपये हैं."

मैं धीरे से बोला, "मां, पिताजी को दे दो, और कह दो, कि वे चिंता न करें जब तक उन्हें काम न मिलेगा हम लोग उनकी मदद करते रहेंगे."

मां की समझ में बात नहीं आयी. वह अचकचायी, रुपये हाथ में थामे आश्चर्य से बोलीं, "यह रुपया कैसा है? किसने दिया?"

मैंने सारी बातें बतायीं. वह चुपचाप हमें देखती रहीं. नीलू डर रही थी कि डांटेंगी लेकिन वे तो कुछ नहीं बोलीं. उन्हें एकटक दीवार को देखते हुए देख मैं घबरा रहा था. लगा, जैसे हमने ग़लत काम किया है.

मां ने उंगलियों से आंखें पोंछ लीं. सीधी पिताजी की ओर चल दीं. हम दोनों का डर के मारे बुरा हाल था, कि कहीं पिटना न पड़े. चुपचाप अपने पढ़ने की जगह जाकर गृहकार्य करने का बहाना करने लगे.

जब मां ने भोजन के लिए बुलाया, तो हम लोग डरते हुए चौंके में आये. पिताजी भी वहीं थे, चुपचाप भोजन कर रहे थे. रात में मां ने बताया कि पिताजी कल ही से एक दूसरे कारखाने में काम शुरू कर देंगे. हम लोग अब कुछ बेचने के बदले अपनी पढ़ाई करें. पिताजी हमें इसी रविवार को पार्क में लगा मेला दिखाने ले जायेंगे.

ज्ञान-कला-केंद्र परिसर,

आमगोला, मुजफ्फरपुर-८४२००२

फ़ोन : ०६२-२२४२६८२

चूल्हे की रोटी

चूल्हे में अंगारे अब भी गर्म थे. बाबूजी अकेले बैठे ताप रहे थे.

उन्हें राधा की आवाज़ सुनाई दी. रतन से कह रही थी - सुनो जी. रात के नौ बजे हैं. बाबूजी अभी तक पीछे बाड़े वाले चूल्हे के पास बैठे ताप रहे हैं. हवा में ठंडक है.

रतन उठा. बाबूजी के पास आया. नम्र स्वरों में बोला - अब सो जाओ ना बाबूजी. फिर से ठंड लग जायेगी.

नहीं रे.... चूल्हे के पास ठंड कहां से आयेगी? पगले, गैस के चूल्हों पर रोटियां बनाने से तो सर्दी लग भी सकती है. चूल्हे के पास नहीं. आज बहुत दिनों के बाद चूल्हा तापने का आनंद ले रहा हूं रे! तेरी मां चूल्हे पर रोटियां बनाती रहती, मैं सामने बैठा तापता रहता. पूरा घर ही गरमा जाता. छुटपने में तुम सभी भाई-बहन चूल्हे के आसपास बैठ कर ही तो गरमा-गरम मकई के सोगरे.... कढ़ी में चूर मसल कर, घाणी का तेल डालकर खाया करते थे. कभी घी-गुड़ का चूरमा बना लेते थे. याद है ना?

रतन को लगा कि अब बाबूजी की चूल्हा-चालीसा जल्द ही समाप्त नहीं होने की. किंतु उन्होंने हमारी अरुचि भांप ली. छड़ी का सहारा लेकर उठ खड़े हुए - लो भाई. तुम ठीक ही तो कहते हो. अब सो जाना ही चाहिए.

रतन उनके साथ उनके कमरे तक गया. उनके सो जाने के बाद उनकी रजाई पर कंबल ठीक से उढ़ाया.

बाबूजी ने कोई हरजस गुनगुनाना शुरू कर दिया तो वह लौट आया.

टीना और बिट्टू रजाई में दुबक कर भी लड़ रहे थे. राधा ने डांटा - चुप्प! सो जाओ अब! रात बहुत हो गयी.

रतन ने टी. वी. बंद करते हुए बताया - आज बाबूजी बहुत खुश दीख रहे थे. क्यों तुम्हें नहीं लगा? कितना मगन होकर भजन गुनगुना रहे हैं.

बाबूजी के गुनगुनाने की धुन यहां तक आ रही थी.

भाई रे... 'मत दीजै मावड़ली ने दोष, करमा री रेखा न्यारी न्यारी.'

राधा ने बत्ती बुझाते हुए कारण बताया - चूल्हा जो जला. आज गूजरो के मोहल्ले में गये थे, भजनों में. लौटते समय पांच-छह कंडे लेते आये थे. चूल्हा जलाकर बैठ गये. भोजन भी वहीं मंगवाया. रोटियों को फिर से खीरों पर सेंक-सेंक कर खाते रहे और सुनाते रहे - सुन री बहू! चूल्हा जला दिया तो रोटियां इसी पर सेंक लेती. चूल्हे की रोटी की बात ही और है.

- अरी तो क्या हो गया? गांव में जीवन गुजरा है. चूल्हे के पास बैठ कर, चूल्हे की गरम रोटियां खाने का शौक है तो है.

राधा चुप तो हुई किंतु रतन को लगा कि यह ऊपरी चुप्पी है. भीतर अभी झल्लाहट है. अंगारों पर राख का आवरण है किंतु भीतर की गर्मी को शांत करने के लिए उससे और बातें करनी पड़ेंगी.

// सुरेंद्र अंचल //

वह फिर बोला - यह 'फ्लैट' तो हमने अब बनवाया है. जाने कितनी पीढ़ियों से गोबर लिपे घर में इसी चूल्हे के पास बैठ कर रोटियां खाते रहे हैं, री!

राधा ने मुंह बिचका कर कहा - किंतु कितना खर्च करके अब तो मार्बल का किचन बनवा लिया. दो-दो गैस कनेक्शन ले रखे हैं. चूल्हे के धुएं से घर काला नहीं हो जायेगा? इतने हिस्से में पक्का मकान बनवाया तो फिर पिछवाड़े चूल्हे वाले इस चौक के टुकड़े को कच्चा ही रहने देने की जिद्द के पीछे क्या तुक है. लीपने की बेगार तो फिर भी रह ही गयी. सोने की थाली में चांदी की मेख, आने-जाने वाले क्या सोचेंगे कि दोनों घणी-लुगाई लेक्चरार हो गये पर गांवई बूं नहीं गयी.

- सो तो है. पर मुझे लेक्चरर बनाया किसने? इस चूल्हे की रोटियों ने. मिट्टी की हंडिया में पकी कढ़ी

और मूंग-उड़द की दाल ने. इस कच्चे आंगन में “धमड़-धमड़” बिलोये जाने वाली छाछ ने, ताज़ा लूनी की चिकनाई ने. गैस सिलेंडर तो अब चले हैं.

- ठीक है. पर जमाने के साथ तो चलना पड़ेगा न! अब मुझसे नहीं होगा. चूल्हा फूँका-फूँकी. रोज़ ही जिद्द करते हैं कि बहू! चूल्हे पर सिकी रोटी से सेहत अच्छी रहती है. स्वाद ही कुछ और होता है. चूल्हा घर की शान होता है. चूल्हा नहीं तो घर कैसा?

राधा को शांत होने की अपेक्षा अधिक तीखी होते देख वह मुस्कराया. फिर गंभीर होकर बोला - बात को समझ. बाबूजी का कभी-कभी मन रख लेना चाहिए. इसी में हमारा हित है. इस प्लैट में लगाने के लिए आठ लाख रुपये कहां से आये? नहर वाले खेत को बेचकर बाबूजी ने ही दिये हैं, और फिर अभी तक यह प्लैट हमारे नाम पर हुआ थोड़े ना है. इन्हीं के नाम चढ़ा हुआ है. फ़िक्स में सात लाख जमा हैं बाबूजी के, बैंक में. जिद्दी हैं, नाराज़ हुए तो दान-पुण्य में उड़ा देंगे. सतसंगी हैं.

- यों कैसे कर देंगे दान-पुण्य! बिना औलाद थोड़े ही हैं. बेटे-बहुएं, पोते-पोती, भरा-पूरा परिवार है. खर्चा कौन कर रहा है. सेवा कौन कर रहा है?

- ठीक है, ठीक है. तेरे सारे त्रियास्र इन गांव वाले सीधे हृदय के बुजुर्गों के सामने भोथरे हैं.

सच्चाई को समझकर वह भी मुस्करा गयी. बाबूजी के हरजस की सुर लहरी अब खरटों में बदल गयी थी.

- सुनो! आज फिर जिद्द पकड़ ली कि मकई के सोगरे चूल्हे पर सिके हुए खाऊंगा. गेहूं की रोटी ठीक से चबायी नहीं जाती. चमड़ा हो जाती है. सर्दियों में मक्की-बाजरा नहीं खायेंगे तो कब खायेंगे?

- तो बना दिया कर एकाध सोगरा!

- मुझसे यह छाती कूटा नहीं होता. ठीक से बनता भी नहीं.

- हां, तो यह कह कि बनाना ही नहीं आता. पड़ोसवाली गंगा बाई से सीख ले. खाते समय तो चटकारे लेकर खाती है.

वह चिढ़ गयी... मकई की रोटियां गैस पर बनाने की होती हैं क्या?

कड़वाहट बढ़ती देख रतन ने इस प्रसंग पर पूर्णविराम लगाने के लिए रजाई मुंह पर खींच ली.



सुरेंद्र अंगल

५ फरवरी १९३९, एम. ए., बी. एड.

प्रकाशन : लगभग २२ पुस्तकें विभिन्न विधाओं में प्रकाशित; कथा संग्रह व उपन्यास, बाल साहित्य, एकांकी आदि.

पुरस्कार : राजस्थान साहित्य अकादमी से २००८-०९ पुरस्कार; राष्ट्रीय शिखर पुरस्कृत, भीलवाड़ा से.

संप्रति : सेवानिवृत्त व्याख्याता, 'साहित्यालोचन मंच', ब्यावर.

□

सुबह बाबूजी नहा धोकर नितनैम से निवृत्त हुए कि राधा थाली परोस कर ले आयी.

बाबूजी ने थाली पर नज़र डाली. गरम-गरम मकई की रोटी, फूली हुई. राबोड़ी का साग और छाछ का गिलास भी. उनकी आंखों में चमक आ गयी,

- अरे वाह. मकई की रोटी. बहू! मजा आ गया. तेरी सासू मिट्टी की केलड़ी पर सेंका करती थी सोगरे. मंदी-मंदी आंच पर. दोनों हाथों में लोया लेकर थप-थप, थप-थप की थापें, सुनते ही रत्नू (रतन) और सोनूड़ी चूल्हे के पास थालियां, कटोरियां लेकर आ जमते थे.

अब केलड़ी की नयी गुणगाथा शुरू होते देख वह वहां से खिसक ली.

बाबूजी बहुत कुछ कहने को चहक रहे थे. मगर श्रोता का अभाव देखकर खाने के लिए बैठ गये.

बहुत देर तक धीरे-धीरे भोजन करते रहे. अतीत में झांकते रहे. मन ही मन मुस्कराते रहे. फिर डकार ली. हाथ धोये. थाली सरकायी.

राधा थाली लेने आयी तो उसे धन्यवाद के शब्द कहना भला कैसे चूकते - “वाह बहूरानी! खाने का मजा आ गया! मगर गैस पर सोगरे इतने अच्छे नहीं सिकते. चूल्हे पर केलड़ी से मंदी आंच पर सिके सोगरों

की बात ही कुछ और है. सुन री! गैस पर कच्चापन रहता है. पेट में गैस उठती है. यह गैस, यह ब्लड प्रेशर, यह डिप्रेशन पहले कहां थे? तेरी सासू तो तारा उगते ही चक्की पीसने बैठती तो पांच-सेर पक्का पीस कर उठती थी.... और सुन. चक्की की घरर-घरर के साथ, मीरा के भजन भी मगन होकर गाती थी. देख कौन सा भजन था वह - 'हां, करमा री रेखा न्यारी न्यारी.' फिर दही मथ कर लूनी लेती थी. भैंसें थीं दो दो! 'बिलोवणे' की छाछ की होड़ आज के डेयरी का घी भी नहीं कर सकता. हां....!

वह फिर जाने को मुड़ी कि रोक दिया - सुन! बात तो पूरी सुन.

तभी रतन कोई फाइल लेने के लिए आ गया - सुन रत्तू! साम को आते बखत गिरधारी गमेती के यहां से एक बोरी छाणे लेते आना. भई सर्दी है तो चूल्हे पर बनाओ रोटियां.

राधा थाली लेकर खिसक गयी. रतन ने उन्हें राजी करते हुए कह दिया - हां बाबू जी ले जाऊंगा. छाणें नहीं मिलेंगे तो ताल से लकड़ियां ले आऊंगा. चूल्हा है तो वह कहता-कहता फाइल लेकर निकल गया.

बाबूजी खुश हुए. उपदेश बंद कर अपना 'गेड़ियां' थामे बाहर चबूतरे पर चौपड़ लेकर बैठ गये. कोई साथी आयेगा तो बाजी जमा देंगे. समय तो गुजरे.

बच्चे स्कूल जा चुके थे.

रतन ने स्कूटर निकाला. गली के मोड़ पर खड़ा हो राधा के आने का इंतज़ार करने लगा. राधा भी वहां पहुंची, दोनों बैठकर चल पड़े.

□

दिन ढले राधा ने देखा कि बाबूजी गूजरों के मोहल्ले की तरफ से थैले में वजन लेकर आ रहे थे. सांस उठ रही है. दूर से ही उन्होंने पुकार लगायी - रतन.... ले ..रे.

राधा ने आगे आकर थैली ले ली. वे बोले - गूजरों की अणची चक्की पीस रही थी रे.... उससे खरीद लाया. भली औरत है, दे दिया. इससे सेहत अच्छी रहती है. और चूल्हे पर सेंकना. बाबूजी ऐसे अंदाज में कह रहे थे, मानो कोई बड़ा तीर मार लिया हो. बिजली की चक्की से अनाज का सत जो जल जाता है! फिर तुम लोग सीधा पिसा हुआ जाने कैसा आटा लाते हो?

बाबूजी की बात अधूरी छोड़, वह आटे की थैली लेकर चली गयी.

घर में जाते ही अपना गुबार रतन पर उतार दिया - सुनो जी! बाबूजी को सांस का उठाव हो रहा है. वे कहीं से चक्की से पिसा आटा खरीद कर लाये हैं और हुकम भी दे दिया है कि चूल्हे पर बनाना रोटियां.

- अच्छा! तो इसमें कौन सा पहाड़ टूट पड़ा. थोड़ी चाय बना दे. सांस की गोली दे आऊंगा.

- पर यह चूल्हे की फूँका-फूँकी नहीं होगी मुझसे. ऐसे पुते-पुताये फ़्लैट को धुएं से सत्यानाश नहीं कर सकती.

- अच्छा मैडम जी. धीरे बोलिएगा. आप जैसा भी बनाना चाहो, बना देना. कह देना चूल्हे पर बनायी है. रोटी फूली हुई होगी तो खुश हो जायेंगे. बस! बात तो इतनी सी....

- इतनी सी कहां? रोटी पहचानते हैं. कह देंगे गैस-गंधी रोटियों से पेट में गैस भर जाती है. तेरी सासू बनाती थी गेहूं की रोटियां जो कचौरी की तरह फूलती थीं. सिकने पर लाल-गुलाबी चूंदडी पड़ जाया करती थी. हां....

- कल से शांता बाई को रोटियां बनाने के लिए रख लेना. रखना तो है. आगे परीक्षा के दिन भी आ रहे हैं. शांता बाई चूल्हे से खटर-पटर करती रहेगी. उसके घर में बिलोवणा भी है. ताजा छाछ भी मिल जाया करेगा. बस!

लेकिन कुछ दिनों के लिए बाबूजी को गांव चले जाने की सलाह क्यों नहीं देते. फसलें खलिहानों में पड़ी हैं. अनाज निकाल कर ठिकाने करना है. अपने चाचा-चाची को तो आप जानते ही हैं और अभी चंग पर थाप पड़ गयी होगी. देवरे पर इनके भजन, भाव सतसंग भी होती रहेगी. सबसे बड़ी बात तो इन्हें घर की चक्की का पिसा आटा और चूल्हे की सिकी मनचाही रोटियां मिलेंगी. हां!

राधा को अपनी बात पर गर्व का अनुभव हुआ कि कितनी समझदारी से बात कितने अच्छे मौके पर उसे सूझी.

मगर रतन ने उसकी बात काट दी - पागल हो गयी है तू तो! बाबू जी को गांव जाने देना ही नहीं चाहता मैं तो. छोटे चाचा बहला-फुसला कर पीपल वाला खेत

लिखवा ही लेंगे. मगरी वाली ज़मीन तो इन्होंने नाथू सांगडी को सेवा के बदले दे ही दी है.

आज रतन ने खुल कर मन की परतें खोलीं. फिर बोला - मांजी के पास कितने गहने थे? कहां हैं वे? यह भी तो मालूम करना है. नहीं तो लोग ही खा जायेंगे.

राधा खुश हुई. बोली - तभी तो कह रही हूं. आप पूछ क्यों नहीं लेते साफ़-साफ़! मरद जात हो. पढ़े-लिखे लेक्चरार साहब हो. पाटवी बेटे हो.

रतन ने छेड़ने के लिए चुटकी ली - पर हां, तुम्हें मांजी के गांवई गहनों से क्या लेना देना? वे तुम्हारे किस काम के? बोर, तिमणिया, कंठी, औगणियां होंगे.... पहनोगी....?

वाह जी! मैं नहीं पहनूंगी तो क्या? सोना तो सोना ही होता है. आठ-दस तोला तो होगा ही. साथ में चांदी भी कम से कम तीन चार किलो तो होनी ही चाहिए.

रात हुई. राधा गरमा-गरम फूली रोटियां परोस कर बाबूजी के लिए रख गयी. फिर जाकर गरम दूध का कटोरा लाकर रखा. प्रशंसा सुनने की आशा में रुकी भी. किंतु बाबू जी ने पूछ लिया - चूल्हा क्यों नहीं जलाया बहू! रतू लकड़ियां लाया तो था.....?

राधा सकपका गयी. बोली - आपसा ने कल चूल्हा जलाया था तापने के लिए. धुएं से दीवारें कितनी कजला गयीं. अभी दीवाली पर ही तो इतना महंगा रंग-रोशन करवाया था. फिर आपको सांस उठती है तो धुआं नुकसान करता है. वैसे भी अब चूल्हे का ज़माना कहां रह गया बाबू जी!

बाबूजी आवाक! उन्होंने सुना कम, समझा अधिक. रोटी के टुकड़े करके, दूध में छोड़े. बहू जाने की तैयारी में थी, उसे रोकते हुए कहा - सुनो! रोटियां अच्छी फूली हैं आज! शाबाश! इसे कहते हैं रोटी. फूल जाय तो रोटी, नहीं तो घाणी में उतरी खल. चूल्हे से ही घर, घर होता है री. दूर से भटका हुआ मुसाफिर भी सुबह-शाम चूल्हों से उठते धुएं को देखकर जान जाता था कि वहां कोई गांव है. पहले घरों में चौबीसों घंटे, बारह महिनो चूल्हे में आग रखी जाती थी. आग का बुझना अपशकुन माना जाता था... गहरी सांस लेकर फिर बात का समापन किया - अब घर कहां रहे, बिखर गये.

लंबी सांस ली और खाने बैठ गये. उस सांस में बाबू

जी के मन की उभरी पीड़ा की आंच महसूस की राधा ने.

रात बीती. फिर सुबह हुई. बाबूजी ने नितनैम से निवृत्त होकर साफ़ धुली धोती और कुरता पहना. साफ़ा बांधा. अपना सामान का थैला जमाया और आवाज़ दी - रतू..... रतना रे.... बहू.... सुनो तो!

रतन ब्रश करता हुआ आया - क्या है बाबूजी! उन्हें कहीं जाने के लिए तैयार देख माथा ठणका - अरे कहां जा रहे हैं आज आप, अचानक?

राधा भी दूध का गिलास लिये आ गयी. बाबूजी ने आगे बढ़कर गिलास ले लिया. स्टूल पर बैठ गये - ला, पी ही लूं. आज वैसे पूनम है. व्रत है. रोटी तो गांव जाकर ही खाऊंगा शाम को.

दूध में फूंक मार-मार कर एक-एक घूंट पीते रहे. अपनी बातें भी कहते रहे - देख, फसलें पक गयी हैं. कट गयी होंगी तो उन्हें संभालना-अवेरना भी तो है. खेती धणियां हैती - फिर कुछ रुककर बोले - अब तुम दोनों मियां-बीबी अच्छी नौकरी पर हो, यों कोई कमी नहीं है. मैं यह भी जानता हूं कि फ़्लैट के पीछे चूल्हे वाली जो कच्ची ज़मीन पड़ी है - वह अच्छी नहीं लगती - सोने की थाली में चांदी की मेख. मैं गया कि तुम इसे बेचोगे ज़रूर. आज नहीं तो कल!- गला भराने लगा. पानी पीया फिर बोलने लगे - बहू! चूल्हे के नीचे दो तीन हाथ का गड्ढा है, उसमें मटकी रखी है. उसमें तेरी सासू के गहने रखे हैं. रतन वह बहू के लिए ही हैं. ले लेना! करीब आठेक तोला सोना होगा तो दो तीन किलो चांदी होगी - फिर पानी पीया. गले की भर्हाट उनके मन की पिघलती बर्फ़ की तरलाहट प्रकट कर रही थी. कोई कुछ बोला नहीं - बाबूजी फिर कहने लगे - फिर तुम इस ज़मीन को बेचना चाहो तो बेच सकते हो! इस फ़्लैट की रजिस्ट्री तेरे नाम कर दी है रे! टीकम सिंह वकील से ले आना. मैं तो अब गांव के खेत संभालूंगा. हां....

और बापू की आंखों में तैर आये आंसुओं को उनकी झुकी आंखें देख नहीं सकीं.

साहित्यलोचन मंच,

२/१५२, साकेत नगर,

ब्यावर (अजमेर), राजस्थान

मो. ९४६०१७८५११

‘सड़ियां निकस गये...’

‘गांव में पीपल, पीपल की छड़ियां,
छड़ियां में झोपड़ी, झोपड़ी में मड़िया।
मड़िया बीमार, सामने त्योहार।
घर बिन कौड़ी, बिलबिलाती छौड़ी।’

... पीपल की छांह में गांव के नग्न-धड़ंग बच्चे गा रहे थे और ‘पिट्टा-पिट्टा’ खेल रहे थे, न जाने उन्हें यह सब किसने सिखा दिया था या रमिया की बेटी को बीमार देखकर उन बच्चों ने अपने मन से यह सब जोड़ लिया था। पर इतना तो सच था कि रमिया की बेटी बीमार थी; उसका हाथ खाली था और सिर पर होली का त्योहार था।

पर भला हो अपनी इस धरती मड़िया की जिसकी कृपा से गांव-देहात में चैत-वैशाख में भूख से तो बिल्ली-चुहिया तक भी नहीं मरती, तो फिर आदमी भला क्योंकर मरे? धरती रत्न-गर्भा जो होती है। इन महिनों में गेहूं, मकई, चना, मटर, जौ, लहर, मूंग, अलुआ आदि-आदि न जाने कितनी तरह की फसलें उपज आती हैं गृहस्थ के खेतों में। जब एक बार कटनी बजरती है तो महीनों तक चलती ही रहती है। फिर तो दौनी, ओसौनी, सहेजनी, बिकौनी... चूहों के बिल तक अनाज से भर जाते हैं। मजदूर-मजदूरनियों के घर भी कमैनी के एवज में अनाज आ जाते हैं। कम से कम इतना अनाज कि भूखे मरने की नौबत नहीं आती। दो-तीन माह तक पेट की चिंता से निश्चिंत। बस, चिंता केवल यही कि किधर मजदूरी मिले कि घर खर्च के लिए कुछ नगदी आती रहे।

मंतो मुसमात का घर भी कुछ इसी तरह से चलता है..... शादी के साल-भर बाद ही तो उसका बेटा आसाम गया था कमाने। लौटकर नहीं आया। तब पहली बच्ची का जन्म हो चुका था और दूसरी मां के पेट में थी। उसका जनम तो उसके अन्ह में ही हो गया था। पहले तो कुछ माह तक खर्चा पानी भेजता रहा था। पर धीरे-धीरे सब बंद - चिट्ठी, संवाद, कपड़ा,

रुपया सब. आंखें पथरा गयी थीं दोनों सास-बहू की राह ताकते. रो-धोकर भी थक गयी थीं दोनों...गांव में कोई परदेश से कमाकर घर आता तो बुढ़िया दौड़ जाती बेटे की कुशल-क्षेम पूछने. पर कोई सही बात बताता ही नहीं था. कोई कहता कि वह नागालैंड चला गया, तो कोई कहता कि मणिपुर. कोई बताता कि गौहाटी में कारू-कामाख्या के मंदिर की किसी योगिनी ने उसे अपने घर में भेड़ बनाकर रख लिया है, तो कोई कहता कि वह कोलकाता चला गया है जहां वह एक बंगालिन विधवा से शादी कर उसी के साथ रहता है. ज़िंदगी तो घिसट ही रही थी सबकी. अब तो थम-सी गयी थी. इस तरह बारह वर्ष का लंबा समय प्रतीक्षा करते गुजर गया था. तब गोतिया-समाज के लोग बिरजू को मरा हुआ मानकर उसकी काम-क्रिया कर देने के लिए सास-बहू पर दवाब डालने लगे थे. गांव-देहात के लोगों की मानसिकता रीति-रिवाज की दासी

॥ डॉ. वासुदेव ॥

होती है. सास तो तैयार भी हो गयी थी. पर पत्नी ने एक नहीं सुनी थी. न तो उसने मांग पोंछी थी; नाही चूड़िया ही फोड़ी थीं. बल्कि उसने तो क्रिया-कर्म भी नहीं करने दिया था. सास को साफ़ कह दिया था, ‘जिस दिन उनका क्रिया-कर्म होगा, उसी दिन दोनों बेटियों के साथ मैं ज़हर खा लूंगी.’ बेचारी बूढ़ी सास भला क्या करती? आखिर मां का ही न हृदय था. उम्मीद की एक क्षीण रोशनी में वह भी जी रही थी. शायद बेटा.....!

पर गांव-देहात की औरतें, वे सब भला क्यों मुंह बंद रखती? इतना नाजुक मसला. छींटा-कसी से कैसे बाज आतीं? लोगों ने तो हुक्का-पानी तक बंद कर देने की धमकी दे दी थी. पर पत्नी रमिया टस से मस नहीं हुई थी. सबको एक ही जवाब देती, ‘मेरा मरद मरा नहीं है. वह ज़िंदा है !!...आयेगा एक दिन अपनी माटी

पर...!!!'

उसकी बातों पर कुछ तो चुप लगा जातीं, पर कुछ उसके जले पर नमक छिड़कती हुई कहतीं, 'भरी जवानी में बेचारी विधवा हो गयी. पगला गयी है.... न जाने पूरी जिंदगी कैसे काटेगी?... अच्छा होता, किसी की छांह ढूँढ़ लेती.' तब वह बिल्कुल दम साध लेती..... भला किस-किस से मुंह लगाती?

इस जनम में मरद का जो सुख लिखा था, मिला. आगे भगवान मालिक. क्या पता, इस धरती पर मुझसे भी अभागन कोई हो !! वह इसी तरह से अपने मन को तसल्ली देती. कभी रोती तो कभी अपने भाग्य पर ठाठकर हंसती और एक बंगला गीत गुनगुनाने लगती...

*'जनम के नो दिली मां मोरे,
लांछना जीवन मोरे,
मां होय आनिलिये ए अभिशाप,
कार काछे बल कोरे कौन पाप,
बिना अपराधे ए की घोर अन्याय.'*

ओठ गुनगुनाते, आवाज़ भी निकलती, पर आंखें डबडबा आतीं. फिर उनसे अश्रुकण मोती के दाने की तरह टप-टप टपकने लगते. पर बड़ी जीवट की महिला थी वह. कुछ प्रकट होने नहीं देती.... सारा गम अपने अंदर ही पचा लेती. सास भी दुःख तकलीफ सहते-सहते पत्थर-हृदय हो गयी थी... सचमुच में दुःख-भूख की भट्टी में तपकर गरीब-गुबार मिट्टी के बरतन की तरह कठोर बन जाता है.

होली थी. पूरे गांव में धूम मची थी. लोग अपने-अपने घर और आस-पास की सफ़ाई कर रहे थे. सफ़ाई में तो रमिया भी लगी थी. पर उसका हाथ इतना तंग था कि होली का सारा मजा उसके लिए फीका हो रहा था. दो दिनों से सास-बहू घर-घर जाकर गोबर-माटी से आंगन-दुआर, दालान-बथान आदि की लिपाई-पुताई करती रही थीं. पर कमैनी के एवज में पैसे की जगह अनाज ही मिले थे...तो फिर पकवान आदि सामान के लिए पैसे कहां से आयेंगे?

दोनों बच्चियों के लिए कपड़े कहां से आयेंगे? फिर बीमार ननद और बूढ़ी सास के लिए साड़ी? सास बार-बार टोकती रहती है कि इस उम्र में भी मेरी जवानी फटी साड़ी और ब्लाउज से झांकती रहती है. अब ढंक जायेगी होली में. वह व्यंग्य से मुस्कराती है. आंखों में



वासुदेव

१६ मार्च १९५२, चकमहमद, गाव (जि. वैशाली);
बी. ए. ऑनर्स (हिंदी), एम. ए., पीएच. डी., डि. लिट,
मानद उपाधि, विक्रमशिला वि. वि. से १९९१ में.

प्रकाशन : पहली कहानी पटना से प्रकाशित 'ज्योत्स्ना' के जुलाई ८१ में; 'इस जंगल के लोग', 'नयी बहू' की आंखें और 'पुंश्चली' (क. संग्रह); 'सुबह के इंतजार में' तथा 'निगोड़ी' (उपन्यास); अब तक देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में १०० के आसपास कहानियां प्रकाशित; 'महापाश' एवं 'धर्मोनास्ति' कहानी का नाट्य रूपांतर, रांची दूरदर्शन द्वारा प्रसारित; 'अरण्यगाथा', तथा 'गांव गंध' (उपन्यास) एवं 'दहशत गर्द' व 'महापाश' तथा 'जीवन की गोधुलि में' (का. संग्रह) प्रकाशन की राह पर.

पुरस्कार : 'इस जंगल के लोग' की पांडुलिपि पर बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा चार हजार रुपये का युवा लेखन प्रोत्साहन पुरस्कार; इसी संग्रह पर हिंदी साहित्य संगम, बोकारो द्वारा रजत पदक; 'सुबह के इंतजार में' उपन्यास की पांडुलिपि पर बिहार सरकार के राष्ट्र-भाषा-परिषद द्वारा पांच हजार रुपये का आर्थिक अनुदान.

संग्रति : मुख्य महाप्रबंधक दूरसंचार, झारखंड परिमंडल, रांची के कार्यालय में सहायक निदेशक (राजभाषा) के पद पर सेवारत तथा विभागीय पत्रिका 'झारखंड संचार' का नियमित संपादन.

फिर वैसे ही आंसू... "कैसे नजर गड़ा-गड़ाकर देखते रहते हैं सब. जवान तो जवान, बूढ़े लोग भी ऐसे निहारते हैं जैसे मौका मिले तो सीधे निगल जायें. वैसे भी लोग मुझे विधवा समझते हैं और विधवा की देह दूर से गम-गम करती रहती है 'गरम' हुई बछिया की तरह."

कथाबिंब/ जुलाई-सितंबर २०१० ।।२१।।

घृणा होती है उसे अपने आपसे... बोझ बन गयी है जिंदगी. जी तो करता है कि सब को जहर-माहूर देकर खुद भी खा लूं. पर फिर सोचती हूं कि अपना-अपना भाग्य लेकर आयी हैं सब. मैं कौन होती हूं इनकी जिंदगी खत्म करनेवाली? वैसे ही पाप के बोझ तले दबी हूं और नहीं! दैव जैसे रखे!

तभी अंदर आती हुई सास बोली, "बहू, पैसे तो मिले नहीं. अब तो समय भी कम है. कल तो दुकान भी बंद रहेंगी. न हो तो खस्सी के जोड़े में से एक को बेच दो."

सास की बातों से वह चौंक उठी. फिर उदास हो गयी. 'दो बकरियां हैं.-- एक पोसिया, एक अपनी. दोनों गाभिन हैं. अपनी वाली के ही दो खस्सी हैं. छः माह से ऊपर. दोनों बेटियों के हिस्से एक-एक. दोनों अपने-अपने खस्सी को भैया कहती हैं - बड़ा भैया.... छोटा भैया. रात में दोनों अपने-अपने भैया के साथ ही सोती हैं. उनमें से एक को हटा देने पर कैसे रह पायेंगी दोनों? और साल-भर भी रह जायेंगे दोनों तो हजारों मिलेंगे.' पर बहू को चुप देखकर सास आगे बोली, "इस बार यदि हम लोग होली नहीं मनायें तो क्या होगा?"

"होगा तो कुछ नहीं मां जी. पर बेटियां दोनों कल्प जायेंगी."

"बेटियों की चिंता छोड़ो. गरीब के घर जनमी हैं. दुःख-तकलीफ सहने की आदत पड़ने दो."

वह चुप लगा गयी. भला बोलती भी तो क्या? सर उठाकर सास की ओर देखा और काम पर जाने लगी. तभी सास आगे बोली, "मजदूरी में आज पैसा मांगना. मैं भी देखूंगी." उसे भी कई घरों का बुलावा था. चली गयी. दोनों बच्चियां बकरियां लेकर पहले ही चली गयी थीं चराने को.

सास-बहू के काम पर जाने के घड़ी-भर बाद ही माथे पर टीन का बक्सा लादे बिरजू आ धमका था. झोपड़ी का टट्टर बंद था. ताला लटक रहा था. स्टेशन से पैदल आया था. थक गया था. बीमार जो था. बक्सा एक ओर रख दिया और कटहल के पेड़ से आँगठ कर बैठ गया. थोड़ी देर बाद ही वह निंदिया गया. खबर पहुंची तो दोनों सास-बहू दौड़ी आयीं. तब तक बिरजू की नींद भी पूरी हो गयी थी. ट्रेन का भूखा था. दोनों ने

धतर-पतर खाना बनाया. खाना खा लेने के बाद वह फिर से खाट पर लेट गया. दोनों खाट के पास ही बैठ गयीं. सास सिरहाने, बहू पैताने. बहू मौन बनी रही. सास कुशल-क्षेम पूछती रही. वह आंखें मूंद रुक-रुक कर जवाब देता रहा.

वह ढेर दिनों से बीमार था. टी.बी. थी. वहां ठीक नहीं हुआ तो गांव आ गया. अब और क्या बचा था सुनने को. तेरह वर्षों के बाद लौटा भी तो टी.बी. लेकर. वह उठकर अंदर चली गयी. मन हुआ. जोर से रोये. पर मुंह नहीं खोला. सिसकती-कपसती रही. तभी अंदर आती हुई सास बोली, "चिंता फिकर मत करना बहू. इतने वर्षों बाद तेरा मरद वापस आया है, यही क्या कम है. कहीं मर-भठ जाता तो... तू सधवा थी न. सधवा ही रही. तू जीत गयी, जग हार गया. कमा-धमाकर पाल-पोस लेना. नजर के सामने तो रहेगा. तू सधवा तो बनी रहेगी...."

"हां, मांजी." उसने जवाब दिया, "इतने दिनों से लोग विधवा कहते रहे थे, अब सधवा तो कहेंगे." वह इस बार अपने को संभाल ना सकी और बुक्का मारकर रो पड़ी. तब सास की आंखें भी भला कहां सूखी रह पायीं. पर वह अपने को संभाले हुए थी. वह आगे समझाने लगी, "मन छोटा न करो बहू. जो होना है. वह तो होकर रहेगा न. क्या पता, कल इससे भी बुरे दिन देखने पड़ें. उसके लिए मन को मजबूत करो... मैं तो भरी जवानी में विधवा हो गयी थी. इसी बेटे का मुंह देखकर जीती रही. तू तो सधवा है. गोद भी भरी है. दुःख का सारा विष गटक जाओ..."

बहू चुप हुई. आंसू पोंछे. गले का बलगम साफ किया. फिर बोली, "दोनों खस्सी बेच दीजिए. डॉक्टर और दवा के पैसे आ जायेंगे." उसने दोनों बेटियों को गोद में सहेजते हुए कहा, "ये तुम्हारे पिता जी हैं. परदेस से आये हैं, बीमार हैं. इनकी दवा के लिए दोनों खस्सी बेचने पड़ेंगे. तुम लोग रोना नहीं. फिर बुआ भी तो बीमार है. वह ठीक हो जायेगी तो उसके साथ खेलना."

दोनों ने सिर हिलाकर मां की बातों का समर्थन किया. फिर दोनों सोये बाप को ठीक से देखने के लिए बाहर को निकल आयीं. अब तक बीमार बुआ खाट से

उतरकर दोनों खस्सी के करीब आ गयी थी और दोनों हाथों से उन्हें सहलाने और चूमने-चाटने लगी थी. वह सिसक रही थी.

पूरे दस माह और सत्ताइस दिनों तक अपनी अनवरत सेवा-सुश्रुषा के बल पर रमिया ने अपने मरद को भला-चंगा कर लिया. यहां तक कि उसकी ननद भी भली-चंगी हो गयी. किंतु वह खुद बीमार हो गयी. सूखकर कांटा-मात्र, एक कंकाल. जैसे उसने पति का रोग अपनी देह में ले लिया हो. इस बीच दोनों खस्सी तो बिके ही, बाड़ी भी बिक गयी. कुछ कर्जा भी चढ़ा. फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी. सोचती, मरद जब भला-चंगा हो जायेगा तो सारा कर्जा सध जायेगा. तब अच्छे दिन आ जायेंगे. तब ननद और बेटियों सबकी शादी-ब्याह भी हो जायेगा...

किंतु बिरजू जैसे-जैसे ठीक हो रहा था. उसका मन शहर को भाग रहा था. और एक दिन उसने मां से कह भी दिया, "अब हम और तुम लोगों पर बोझ बने रहना नहीं चाहते. सोचते हैं, शहर चले जायें."

उसकी बातों से मां-बहू को बेहद खुशी हुई. पत्नी तो चुप ही रही. पर मां बोली, "लेकिन थोड़ा और ठीक हो लो तो जाना. ज़िंदगी-भर तो कमाना ही है. शरीर ठीक रहेगा तो..."

"लेकिन ज़्यादा दिन यहां ठहरने से नहीं चलेगा."

"नहीं चलेगा मतलब. वहां कोई अपना धंधा है क्या ?"

"नहीं. ऐसा कुछ नहीं है. पर हम ज़्यादा दिन यहां नहीं रुक सकते...."

"तो ठीक है. पर अभी तुमको सेवा-सुश्रुषा की ज़रूरत है. बहू को भी साथ लेते जाओ. वैसे भी तुम्हारी सेवा करते-करते बेचारी खुद बीमार पड़ गयी है. कुछ दिन साथ रह लेगी तो...."

अब तक बहू वहां से घसक गयी थी. उसने थोड़ा विवश होकर बताया, "नहीं, मां. उसको साथ नहीं ले जा सकते हम..."

"क्यों नहीं ले जा सकते ?" मां गुस्सा गयी थी. उसकी तेज़ आवाज़ सुनकर बहू फिर से झोपड़ी से निकलकर टट्टर की ओट में खड़ी हो गयी थी और अकानने लगी थी. मन घबराने लगा था.

वह सच उगलते हकला रहा था. बोला, "तू नहीं

समझेगी मां... इसको साथ ले जाने से हमारा नहीं चलेगा."

"तू कैसा मरद है रे!" मां चिढ़ गयी थी, "जब तू रोग लेकर आया था तब इसी औरत ने जी-जान लगाकर तुम्हारी सेवा की थी. पर आज जब इसकी देह गिर गयी है तो तू इसे अपने साथ भी रखना नहीं चाहता."

मां के गुस्से को झेल पाना अब उसके लिए मुश्किल हो रहा था. उसने उसी तरह हकलाते हुए आगे कहा, "अब तुमसे क्या बतलाऊं मां ? वहां मेरा परिवार है. दो बच्चे भी हैं एक बेटा और एक बेटी..."

मां को जैसे सांप सूँघ गया हो. वह वहीं सिर थामकर बैठ गयी, "हे देव. यह सब सुनने से पहले हमें उठा क्यों न लिया." वह रोने लगी. बहू को तो चक्कर आ गया था. वह किसी तरह तिलमिलाती-कांपती-ढहराती अंदर आयी और खाट में धंस गयी.

बिरजू को लगने लगा. यह सब मां को बताकर उसने शायद अच्छा नहीं किया... लेकिन एक न एक दिन तो यह भेद खुलना ही था... अच्छा हुआ कि आज ही खुल गया. मां के सामने तो उसे आत्मग्लानि हो रही थी, बहू से आंख मिलाने से भी वह कतराने लगा था. इसलिए अब वह जल्द से जल्द गांव से निकल जाना चाहता था. शाम को ही मां को फरमा दिया, "मसूल का पैसा सूद पर ला देना. कल गाड़ी पकड़ लेंगे. वहां पहुंच कर पैसे भेज दूंगा...."

"जैसे सौ मन बोझ वैसे एक मन और..." मां ने बुझे मन से ही सही, भाड़ा-भर पैसे सूद पर ला दिये. सूद का दर भी खूब - दस रुपये सैकड़ा महीना. बहू ने भी कोई विरोध नहीं किया.

दूसरे दिन, सुबह-सुबह, बिरजू जब मां के पांव छूकर घर से निकलने लगा तो वह बहू के करीब जाकर बोली, "जा रहा है." पर बहू ने उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया. थोड़ी ही देर पहले गांव की एक औरत अपनी एक बकरी पोसिया पर दे गयी थी. वह उसे ही खूंटे से खोलकर काम पर जाने लगी.

❧ 'धर्मशीला कुटीर'
ग्राम- अरसंडे, पत्रा. बोड़ेया,
जिला- रांची - ८३४२४०
मो. - ९४३०३०३०९४

सरहद के पार

रेत को उड़ते-उड़ते खुद पता नहीं होता कि वह कहां की है, कहां उसे जाना है और कहां उसका ठिकाना है? वह तो जिधर हवा का रुख है उधर ही चल देती है. जिस तरह रीढ़विहीन लोग उगते सूरज की ओर झुकने लगते हैं और अब तो कौन रीढ़विहीन नहीं है? लेकिन क्या यह दुनिया, समाज रीढ़विहीन लोगों के सहारे चल रही है? ऐसा नहीं है बल्कि बहुत सारे लोग दृढ़ निश्चयी, मेहनती और अपने इरादों के मजबूत हैं. रेत की आंधियां सीमावर्ती इलाकों में तो बहुत ही चलती हैं. चारों तरफ रेत ही रेत और पीने का पानी गांव में नहीं. सरकारी इंतजामात सिर्फ कागज़ों तक ही सीमित. हकीकत यह कि दस-दस कि. मी. दूर से महिलाएं, बहन, बेटियां मां पानी के मटके लेकर तड़के जाती हैं और सूर्य चढ़ता है तब तक आती हैं. गांव के गांव ऐसे जहां खेती बाड़ी होने की कोई संभावना नहीं. ऐसा ही एक गांव सतरंजीखेड़ा बाड़मेर के थोड़ा दक्खिन में गुजरात की सीमा के पास है. जहां न जीने के साधन, न रोजगार और न भविष्य.

शायद ही आज़ादी के बाद कभी किसी सरकार को उस गांव की सुध आयी होगी. यहां कुछ युवकों का रोज का काम है पाकिस्तान के सीमावर्ती प्रांत में जाना और वहां से मादक पदार्थ, नकली करेंसी लाकर यहां के एजेन्ट को दे देना. कूरियर के रूप में काम करते-करते कुछ पकड़े जाते हैं. कुछ गोलियों का शिकार होकर अखबार की सुर्खियां बनते हैं, भारतीय फौज की मुस्तैदी से. घुसपैठिये मारे गये कुछ पुरुष यहां से पलायन करके प्रांत के कोटा, बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, उदयपुर शहरों में मजदूरी करने, ड्राइवरी करने या फिर घरेलू नौकर बनने चले जाते हैं. इस क्षेत्र में अल्पसंख्या बहुसंख्यक है और बहुसंख्या अल्पसंख्यक फिर भी पीर बाबा की दरगाह सबकी बराबर से रक्षा करती है. वैसे यह हैं ही इतने गरीब, लाचार और बेबस कि भगवान इनकी जिंदगी के अलावा और कुछ भी छीन नहीं सकता और यह जिंदगी हाथ में लिये घूमते हैं. कई तो स्थायी

तौर पर सीमा पार प्रांत में विवाह करके वहीं बस गये थे.

'क्या बात है? आजकल बहुत इधर-उधर आ जा रहा है', भारतीय सीमावर्ती रक्षक दल के हवलदार ने सीमा चौकी पर आरिफ से पूछा.

'अरे कहां साहब, यह तो नियति है जो यहां से यहां ले जाती है', ऊंचे, लंबे कद और घुंघराले बालों वाले २८-३० वर्षीय हंसमुख आरिफ ने ऊंट पर चढ़े हुए जवाब दिया - 'आप सुनायें साहब कब मिलेंगे?'

'अरे आ जाना कभी भी, तुम्हारे साहब ने जो समय दिया हो उस पर ही तो हमारे साहब चलते हैं,' कहते-कहते दोनों ठठाकर हंस पड़े. आरिफ अपने ऊंट को लेकर रेगिस्तानी क्षेत्र में भारतीय चौकी के आगे गांव की तरफ बढ़ गया. रास्ते में ही धूल उड़ाती जोंगा

॥ डॉ. संधीप अवस्थी ॥

जीप सामने आती दिखाई दी. आरिफ एक तरफ रुककर प्रतीक्षा करने लगा. सीमावर्ती रेगिस्तानी जिलों जैसे जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर, बीकानेर में सड़कें हैं पर वह एक ही सीध में कोई घुमाव, न कोई ढलान. रेगिस्तानी आंधियों के समय यही सड़कें धूल से ढक जाती हैं. जब गांव आते हैं मनहारी, टिब्बा, लाठी, तब वहां से एक सब लेन अंदर गांव की तरफ मुड़ जाती है. आवागमन का साधन सरकारी बसें, जीपें या ऊंट गाड़ी है.

जीप से दो लोग उतरे, 'कैसा है आरिफ? लेट हो गया आज.'

'हां साहब, वहां भोर तीन बजे चला था, फिर भी थोड़ी देर हो गयी. सामान सारा ले आया हूं.'

चार बक्से उसने ऊंट के दोनों तरफ ढक रखे थे. वह उतारने लगा और बोला, 'साहब, थोड़ा कमीशन बढ़ाओ न. लोग पूछते हैं अभी भी वहीं के वहीं!'

'तो क्या करें प्रमोशन कर दें?' दूसरे गंभीर चेहरेवाले ने कहा.

‘नहीं साहब पर क्या कहूँ अब लोग पहचाने लगे हैं. दोनों तरफ के,’ आरिफ धूल में भरे रूखे बालों को झटकता बोला.

‘तो कोई दिक्कत आयी तेरे को? आयी है तो बता? दोनों तरफ हमारे अपने आदमी हैं तुझे कोई तकलीफ नहीं होती होगी!’

‘सो तो है साहब, लोग कहते हैं कुरंजा पक्षी की भांति मैं कहीं भी जाऊँ वापस अपने ठिकाने अपने गांव पर पहुंचता हूँ.’

तब तक चारों बक्से गुप्त खानों के हवाले हो चुके थे. पहले व्यक्ति ने पांच हजार की एक गड्डी ऊंट पर बैठे आरिफ की ओर उछाल दी जिसे उसने दक्षतापूर्वक पकड़ लिया. ‘अगली बार तेरा कमीशन बढ़ाने की बात पक्की. पता तो है न कब है अगली बार?’

आरिफ ने हिसाब लगाया और बोला - ‘अगले गुरु के बाद के सोमवार.’

‘बिल्कुल ठीक मेरे पट्टे.’ - वह आदमी हंसते हुए जीप में सवार हुआ और जीप धूल उड़ाती वापस चली गयी. पीछे आरिफ अपने ऊंट पर ढोला-मारू की लोकगाथा का प्रेमगीत गाता अपने गांव, सितारा के तसव्वुर में रवाना हुआ.

सितारा आरिफ की नयी नवेली दुल्हन, यदि कच्ची दीवारों पर गोबर के लेप और फूस की छत को घर कहा जाये तो, घर पर थी. वह रात्रि के भोजन की तैयारी लालटेन की रोशनी में कर रही थी जब आरिफ के ऊंट की घंटियां सुनायी दीं. चूल्हे की आंच से दमकते यौवन के नमक से भरपूर चेहरा, गले में हंसली, हाथों में कोहनियों तक लाख की चूड़ियां, काला लहंगा, लूगड़ी, गले में मोती माला पहने सितारा का अभी-अभी गौना हुआ था. उसके चेहरे पर इंतज़ार की बाट जोहते भाव के स्थान पर अचानक खुशियों ने दस्तक दी. वह उठ के झोपड़ी के दरवाजे पर खड़ी हो गयी. आसपास दूर-दूर कच्चे घर स्थित थे. अंधेरे के धुंधलके में सब के यहां से भोजन की खुशबू उड़कर आकाश में बैठे अल्ला मियां की भूख बढ़ा रही थी. शायद वे भी शाम का भोजन पकने का इंतज़ार कर रहे थे.

आरिफ ने दूर से ही सितारा को अपनी झोपड़ी के बाहर खड़े देखा तो वह गीत गुनगुनाता, झूमता ऊंट को सीधा उसके पास ले गया और बोला, ‘चल तुझे ऊंट की



अरिफ

२९ जुलाई १९६९, अजमेर (राज.);
विज्ञान स्नातक, एम. ए. (दर्शन, समाजशास्त्र),
वेदांत पर पीएच. डी. (नेट)

लेखन : राज्य की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं, समीक्षाएं, कहानियां प्रकाशित.

‘संचिता’ नामक साहित्यिक पत्रिका का १८ वर्ष पूर्व २ वर्षों तक संपादन/प्रकाशन, शोध पत्रिका का संपादन. एक काव्य तथा कहानी संग्रह शीघ्र प्रकाश्य.

अन्य : विभिन्न महाविद्यालयों में १० वर्षों तक प्राध्यापन के बाद कैरियर काउंसलर और निदेशक ‘एजुकेशन पाइंट कैरियर इंस्टीट्यूट’, समाज से जुड़े ज्वलंत मुद्दों पर बेबाक विचारोत्तेजक लेखन. लीलाधर मंडलोई द्वारा संपादित युवा कवि कोश में चयनित.

सवारी करा लाऊं.’ सितारा ने खूबसूरत नीली-नीली आंखों में अनुराग भरकर अपने बलम को देखा और कहा, ‘हटो जी, अभी तो थके-हारे आये हो और आते ही चुहल कर रहे हो?’

‘अरे इसमें ही तो मेरी आधी थकान मिट जाती है.’ - आरिफ ने ऊंट से कूदते हुए कहा - ‘बापू कहाँ हैं?’

‘पड़ोस के गिरधारी की तबियत खराब थी उसे काढ़ा देने गये हैं.’

‘तो फिर तू चल तुझे सैर करा ही दूँ आज.’

‘अरे नहीं नहीं,’ वह पीछे हटती बोली - ‘आसपास देखो लोग देख रहे हैं. क्या कहेंगे?’

‘अरे लोगों के डर से अपनी ब्याहता को प्यार करना बंद कर दूँ क्या?’

‘तुम्हें तो शर्म नहीं है पर मुझे आती है.’ - वह ऊंट की रस्सी लेकर उसे पिछवाड़े में बांधने ले गयी.

आरिफ गमकता हुआ उतरा और हाथ मुंह धोकर घर के सामने बिछी खाट पर बैठ गया. सितारा अपनी मीठी मुस्कान के साथ पाटिये लगाने लगी. कुछ देर में सितारा गिलास भरकर कड़क चाय के साथ पतली रोटियां, प्याज-मिर्ची की चटनी के साथ पाटिये पर रख दीं. आरिफ खाने की सुगंध में ऐसा डूबा कि पूछे मत. खाते-खाते वह बोला, 'तुम्हारे हाथों में जादू है जादू.' सितारा ने मुदित मन से मिट्टी के चूल्हे पर रखे तवे पर रोटियां पलटते हुए कहा, 'मेरे लिए क्या लाये बताओ!'

'बताऊंगा अपनी सितारा को. ऐसी भी क्या जल्दी है?' आरिफ ने ग्रास में लाल मिर्च की चटनी लगाकर मुंह में रखते हुए सितारा की खूबसूरती को लालटेन और चूल्हे की तपन में घूंट-घूंट पीते आंख भरकर निहारते और सांस भरकर अपने में उतारते हुए कहा.

बाहर खांसने की आवाज़ आयी तो सितारा ने सर पर दुपट्टा ढक लिया और कहा, 'बापू खाना लगा दूं?'

देर रात आरिफ ने टिकली, नयी ओढ़नियां, पांव की नक्काशी वाली जूतियां सितारा को नज़र कीं और साथ में एक खूबसूरत सा बोर. सब सामान देखकर छोटी बच्ची की तरह हंसकर उसके चेहरे पर इतनी प्यारी मुस्कुराहट आयी कि आरिफ को लगा वक्त यहीं थम जाये, वह और सितारा यूं ही एक दूसरे को देखते रहें और जीते रहें और घूंट-घूंट ज़िंदगी पीते रहें.

□

उधर जीप का सामान जोधपुर में बिना बाधा पहुंचाते हुए वह गंभीर चेहरेवाला बोला, 'बॉस यह आरिफ का क्या करना है?'

'मतलब?' - मध्य कद काठी के सेठ ने सामान को अपने गोदाम में वहीं खाद्य सामग्री के बोरों में छुपाने का निर्देश देते हुए पूछा. 'उसे दो वर्ष हो गये हैं यही काम करते-करते. वह कह रहा था दोनों तरफ उसे बॉर्डर वाले अच्छी तरह जानने लगे हैं. कुछ कमीशन बढ़ाने की बात कर रहा था.'

'तुमने क्या कहा?' - सेठ ने गंभीरता से पूछा - 'वैसे जानते तो हो न जो चेहरा परिचित हो जाये उसका क्या करते हैं?'

'हां, हां, क्यों नहीं जानता हूं- उसने मुस्कुराते हुए हाथ से गोली चलाने का इशारा किया.

'तो फिर अगली बार यह बॉर्डर पर सामान लाता घुसपैठिये की तरह मारा जाना चाहिए.'

इस सबसे बेखबर आरिफ अपनी सितारा को ऊंट, सिकंदर की सवारी सिखा रहा था.

'देख पहले डर लगता है पर जब ऊंट पहचान लेता है कि सवार अच्छा है तो फिर यह तुम्हारी गाड़ी को तुम्हारे सोते-सोते भी ठिकाने पहुंचा देता है' - आरिफ का बापू उत्साह से बता रहा था अपने हट्टे-कट्टे बेटे और बहू को. फिर सितारा ऊंट की गर्दन पकड़कर बैठ गयी और आरिफ की लायी हुई नयी मोचड़ी पहने पांवों को अच्छी तरह जमा लिया. ऊंट धीरे-धीरे मुंह चलाता गंभीरता से इशारा पाकर उठा. सितारा डगमगायी और कसकर ऊंट की गर्दन से लिपट गयी.

आरिफ हंसते हुए बोला - 'बस-बस, आ गया तुझे ऊंट की सवारी करना. तू हिम्मत रखे तो बाकी सारा काम ऊंट ही कर लेगा.' सितारा ने ऊंट को पकड़े रखा और आरिफ की बातों पर विचार कर मुस्कुरा दी. ऊंट धीरे-धीरे चलने लगा. आरिफ पीछे-पीछे आ रहा था. कुछ दिनों में ही सितारा ऊंट की सवारी सीख गयी. पूरे गांव की औरतें, बच्चे सब कौतुहल से देखते, 'आरिफ सितारा को ऊंट की सवारी सिखा दियो', कहते. सितारा पानी भरने जाती तो साथ की स्त्रियां उसे छेड़तीं, 'अरी कौन-सा मंतर फूंका तूने जो आरिफ तेरो ही नाम लिये जाता है?' वह लाल चेहरा लिये चुपचाप मुदित मन चलती रहती. दस कोस आना-जाना, सर पर दो, बगल में एक गगरी लेकर भी फूल से पथ पर चलने का उसे अहसास होता और आरिफ गांव के बुजुर्ग और दोस्तों में खूब घुलता-मिलता. पासवाली इमरती काकी, जिनके बेटे बहू अहमदाबाद में मिल मजदूर थे, की दमे की दवाई खत्म होने पर जोधपुर जाकर लेकर आया था. सबकी आंखों का तारा था आरिफ यह देखकर उसके बूढ़े बाप का सिर गर्व से तन जाता था. ऐसा लायक बेटा और सुघड़ बहू भगवान सबको दे. उसे दोनों टाइम वक्त पर खाना, चाय कलेवा सब मिल जाता था.

ऐसे ही एक दिन अंधेरा होने पर दो ऊंट सवार आरिफ के दरवाजे पर रुके और ठकठकाने लगे. उसका बापू बोला, 'कुण हो साब, किससे मिलना है?' तभी उसे उनकी सीमा सुरक्षा बल की वर्दी दिखाई दी. वह

पीछे हटा और उन्हें इयोद्धी में रखी मंझी पर बिठाया.

‘आरिफ कहां है? उससे काम है,’ सूरत से कम जालिम दिखने वाला बोला. ‘आता ही होगा जब तक साहब आप पाणी पियो.’

पानी पीते-पीते चाय आ गयी. तभी आरिफ के ऊंट की घंटियों की टनटनाहट सुनायी दी. आरिफ ने ऊंट रोका, बांधा और अंदर आया. दोनों को पहचानकर सलाम दिया. ‘कैसे आना हुआ साहब? मुझे बुलवा लेते मैं आ जाता.’

‘अब तू आ या हम आये बात तो एक ही है. तूने सुना होगा. नया डिप्टी आया है. अभी ट्रेनिंग के बाद लगा है उस सिलसिले में काम है.’

बड़े अफसरों की पहली-पहली नियुक्ति में एक अतिरिक्त करार होता है मातहतों से. वह उसकी पोस्टिंग की जगह पर कुछ महीनों के अंतराल में छोटी-मोटी कार्यवाही, छापे पड़वाकर कुछ लोगों की गिरफ्तारी दिखाकर उस तरह उसे सपोर्ट भी करते हैं और उसकी फ़ाइल में उपलब्धियों की एन्ट्री भी करवा देते हैं. फिर बाद में वह अफसर खुद ही एक खूंखार आदमखोर शेर बन जाता है और प्रदेश भर में दहाड़ता हुआ अपना परचम लहराता है. आरिफ को सीमावर्ती कार्य, तस्करी करते दो वर्ष ही हुए थे. उसमें यह नया डिप्टी आया था.

‘तो तुम्हें अपना कुछ माल और एक दो आदमी पकड़वाने हैं,’ सुमेर सिंह नामक बड़ी-बड़ी मूछों वाला हवलदार बोला.

‘पर साहब आप जानते हो मैं तो कूरियर हूं. मेरे पीछे वह जोधपुर का फत्ते खां, बुंदू खां और उनके ऊपर कोई बॉस है. आप उनसे बात करो.’

‘उनसे बात नहीं हो पायी है उनका नंबर चौकी इंचार्ज के पास है. वह बात करेगा पर अभी तू तो तैयार है.’

‘पर साहब तस्करी करता किसे पकड़वाऊं? फिर छुड़ायेगा कौन? आप?’

‘भाई यह तू जाने. तेरे को हमने बता दिया. अगली बार जब भी जाये मिलके जाइयो,’ कहकर दोनों उठे, ऊंट पर बैठे और चले गये. पीछे छोड़ गये आरिफ को चिंतामग्न और दुखी. उधर सितारा जो यह सारी बात छुपकर सुन रही थी वह भी चहकना भूल गयी

और सोच में डूबी आंखों से आरिफ को देखते हुए अपने घर के कार्यों में लग गयी.

आरिफ अगले दिन कुछ परेशान और सोचता सा दिखा. अपना माल पकड़वाना ही था क्योंकि परिचित सीमा सुरक्षा बल की चौकी वालों का आदेश था. ‘ऊपर बात करनी होगी’, के निश्चय के साथ उसने सामने से ऊंट पर पीतल की कलसियां लादकर पानी लाती सितारा को देखा. सितारा अब ऊंट सवारी में माहिर हो गयी थी और एक अनूठा तरीका उसने ईजाद किया था. पानी ऊंट पर भरकर कुशलतापूर्वक ले आती थी. उसने मुस्कराकर उसे निहारा और ऊंट से पानी के बर्तन उतारने में सितारा की मदद करने लगा.

‘अरे तुम रहने दो मैं उतार लूंगी,’ सितारा ने हवा में उड़ती ओढ़नी का सिरा कमर में दबाते हुए कहा. कुछ देर बाद वह आरिफ और बापू के लिए गरमा-गरम सीरा बनाकर परोस रही थी.

‘वाह मजो आ गियो आज तो,’ बापू ने तृप्तिपूर्ण ढंग से होंठ चटकाये और भरपेट पानी पीकर गांव की चौपाल पर हुक्का गुड़गुड़ाने निकल गया. पीछे रह गये वो दोनों, नादान, मासूम, प्यार भरे दिल आनेवाली स्थिति से अनजान!

कुछ देर बाद आरिफ ने मोबाईल से ऊपर कॉल लगायी और सारी बात बतायी. थोड़ी देर बातें सुनने के बाद स्वीकृति का आदेश इस निर्देश के साथ आया कि इस बार माल हर बार के मुकाबले एक तिहाई ही लाया जाये और ज़्यादा कीमत का न होकर लाख रुपये के अंदर हो.

‘ठीक है जी मैं ख्याल रखूंगा. अधिक कीमत का न होकर लाख रुपये के अंदर हो.’

‘और हां’ – वहां से आवाज़ आयी, अगली बार तुम्हारा कार्य क्षेत्र बदला जायेगा, इसलिए पूर्ण सावधानी से जाना. सीमा चौकी पर तुम्हारा परिचय है वहां कह देना कि माल पकड़ें, आदमी यानि तुम्हें वे न पकड़ें.’

‘ठीक है, मैं कोशिश करूंगा.’

इधर फ़ोन रखा और उधर बॉस ने सीमा चौकी इंचार्ज कृपाल सिंह को फ़ोन लगाया, ‘डिप्टी साहब की आगवानी का इंतजाम परसों का किया है.’ कृपाल सिंह बोला, ‘थोड़ा हमारा भी ख्याल रखो न. सब जगह महंगाई आसमान छू रही है और यहां आप का

माल लेने, ले जाने का रेट वही चल रहा है।’

‘अच्छा-अच्छा हो जायेगा तुम्हारा भी हो जायेगा। अभी तो यह करो कि माल के साथ घुसपैठिया भी ढेर कर दो।’

‘आरिफ? अरे भई वह तो काफी अच्छा काम कर रहा है। आपका पुराना आदमी है।’

‘इसीलिए कह रहा हूं जो जाना-पहचाना चेहरा हो जाये वह हमारे धंधे के काबिल नहीं रहता।’

‘जैसी आपकी इच्छा। इसका एक लाख रुपया लगेगा ऊपर से?’

निश्चित दिन आरिफ मुंह अंधेरे सिकंदर पर रवाना हो गया। सितारा को पानी लाने हेतु तकलीफ न हो इसलिए उसे अपने साथ बॉर्डर की कांटों की बाड़ के पास छुपाकर ले गया। वहां से सितारा को ऊंट वापस ले आना था और अपने साथी द्वारा लाये ऊंट पर उसे सीमा पार निकल जाना था।

सितारा अंधेरे में भी आरिफ को दमकती हुई लग रही थी। उसने वादा किया था सितारा से कि इस चक्कर के बाद वह यह काम छोड़ देगा। जोधपुर जाकर कोई और काम ढूँढ़ेगा। सितारा ने गौर से इलाका देखा और गांव तक का रास्ता वह पहचानने लगी। आरिफ बोला, ‘तू चिंता न कर सिकंदर तुझे अंधेरे में भी घर ले जाकर छोड़ेगा।’ आश्वस्त करती मुस्कान देता आरिफ साथी के ऊंट पर सीमा पार रवाना हुआ। सितारा देखती रही, धीरे-धीरे आरिफ का ऊंट सीमा पार के अंधेरे में कहीं गुम हो गया। उधर दूर झोपड़ियों के पीछे रात्रि का तारा डूबा, उधर सूर्य के आने की सूचना देती भोर की उजास फैलनी शुरू हुई। सितारा का मन न जाने क्यों भारी-भारी हो आया था। वह सिकंदर पर बैठी न जाने किन ख्यालों में खोयी हुई चलते-चलते अपने गांव के रास्ते पर पहुंच गयी।

दो दिन बड़ी बेचैनी, मुश्किलों और आशंकाओं से भरे बीत गये। आज रात को आरिफ को आना है। सितारा सुबह से ही एक चक्कर अतिरिक्त दस कोस का लगाकर आरिफ के लिए पानी ले आयी थी। वह सुबह से मुदित मन से कार्य कर रही थी। शाम होते-होते उसने आरिफ की पसंद का कोरमा, मटन, चावल सब बना लिये थे। फुल्के उसने उतारकर बापू को खिला दिये। आरिफ को वह अपने हाथ से गर्मागर्म उतारकर

खिलायेगी, ऐसा उसने मन में सोचा। धीरे-धीरे रात्रि के नौ बज गये आरिफ को आ जाना चाहिए था। वह झोपड़ी की देहरी पर एक तरफ लालटेन रखकर बैठ गयी और आरिफ के आने का रास्ता निहारने लगी। उसकी व्याकुलता बढ़ रही थी। उसने सिकंदर की तरफ देखा वह भी व्याकुल हो रहा था।

उधर आरिफ करीब एक तिहाई माल से भरे दो बक्सों के साथ सीमा की तरफ अपने साथी के साथ बढ़ रहा था। तभी धूल भरी आंधी चलने लगी। अंधेरा हो चला था इसलिए हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था। सामने ही सीमा होनी चाहिए – वह ‘नो मेन्स लैंड’ पार करता हूआ धूल भरी आंधी में सोच रहा था। उधर चौकी पर बैठा कृपाल सिंह अपने दो हवलदारों तथा सिपाहियों के साथ मुस्तैदी से एन्कोउंटर और माल पकड़वाने की तैयारी में था। आरिफ के बॉस ने आरिफ के आगमन की सूचना चौकी पर दे दी थी। धूल भरी आंधी से टॉवर के कुछ तार हिल गये थे इससे चार में से दो ही सर्च लाइटें, अपर्याप्त-सा प्रकाश फेंक पा रही थीं। तभी दूर अंधेरे में ऊंट का साया उभरा, जिसे टॉवर पर बैठे सिपाही ने देखा और वायरलैस पर चौकी पर बताया। ‘आदमी अच्छा था पर क्या करूं? ऐसे लोगों का ऐसा ही अंत होता है,’ – मन ही मन सोचता कृपाल सिंह अपने साथियों के साथ बाहर आया।

ऊंट पर दो लोग थे आरिफ का साथी, गैर मुल्की था जो यहां अपने किसी रिश्तेदार से मिलने आया था। आरिफ मध्यम गति से धीरे-धीरे ऊंट को बढ़ा रहा था। वह अपना एन्कोउंटर होने से बेखबर था। मौत उससे कुछ ही कदम दूर थी। आंधी और अंधेरे के कारण जहां से वे हर बार जाते थे वहां से लगभग आधा कि. मी. वे उत्तर की ओर से भारतीय सीमा में दाखिल हुए। इसके दूसरे सिरे पर ढेर सारी खेजड़े की झाड़ियां थीं, कांटे थे, घुप्प अंधेरा था। दूर जलती सर्च लाइट का अपर्याप्त प्रकाश ही पहुंच पा रहा था। आरिफ ने चुपचाप साथ आये मेहमान को झाड़ियों में उतरने का इशारा किया। मेहमान थोड़ा हिला डुला ही था कि गोली की आवाज आयी। पीछे बैठे सवार के मुंह से हाय निकली और वह एक ओर से झुक गया। आरिफ समझ गया आज माल पकड़े जाने के साथ एन्काउंटर की भी तैयारी है। वह पूरी तरह ऊंट की गर्दन से चिपट

गया और ऊंट को दायीं ओर स्थित झाड़ियों के पीछे ले जाने लगा. तभी बायें से एक गोली पीछे बैठे युवक का सीना भेदती हुई निकली. आरिफ ने तुरंत अंधेरे में अनगिनत झाड़ियों के भीतर निशब्द छलांग लगा दी. झाड़, झंखाड़, कांटे उसके हाथ-पांव, सीने चेहरे पर लगे लेकिन वह झाड़ियों में अंदर ही अंदर बढ़ता रहा. उधर लगाम छूटते ही ऊंट स्वतः ही दायीं ओर अंधेरे के रास्ते, जो कि चौकी से करीब सवा कि. मी. दूर था भागने लगा. कुछ देर बाद दूर अंधेरे में चार-पांच ऊंटों के साये नज़र आये. वे भागते हुए ऊंट को घेरने की फिराक में थे. आरिफ के आगे से वे गुजरे तो उसे उन लोगों के स्वर सुनाई दिये, 'देखो बच के जाने ना पाये.'

'अरे साबजी, कैसे जायेगा? मेरी राइफल की गोली सीने में लगी है मैंने खुद देखी है,' हवलदार बोल रहा था. 'चलो घुसपैठिया भी मारा गया, और माल भी पकड़ा गया. साहब का प्रमोशन पक्का,' कृपाल सिंह की आवाज़ आयी.

यह कारवां जब काफी दूर निकल गया तो आरिफ झुके-झुके ही चौकी का लंबा घेरा काटते हुए झोपड़ियों की आड़ से बढ़ने लगा. रास्ता पूरा सुनसान था. चौकी के विपरीत वह जा रहा था. उसका पूरा शरीर कांटों से बिंधा पड़ा था और उस पर थकान हावी हो रही थी. अचानक उसे ठोकर लगी, और वह रेगिस्तानी मिट्टी पर मुंह के बल गिरा. गिरते-गिरते उसने अपनी धुंधली आंखों से देखा कोई साया उसकी तरफ बढ़ रहा है. उसकी ऊपर की सांस ऊपर ही रह गयी और वह दम साधे पड़ा रहा. 'आज बचा ले' - वह अल्लाह ताला से दुआ करने लगा. तभी उसके कंधे पर एक हाथ पड़ा और कानों में हौंसला देती, अजान सी मधुर आवाज़ पड़ी, 'तुम मेरा हाथ पकड़ लो जी.' सितारा, अपने आंसुओं को रोकती हुई रेगिस्तानी मिट्टी में नहायी हुई, दृढ़ निश्चय की मूर्ति बनी उसके लिए अल्ला मियां ने अपना दूत बनाकर भेजी थी. वह चुपचाप धीरे-धीरे उसका हाथ थामे अंधेरे में चलने लगा. कुछ दूरी पर ही सिकंदर बैठा हुआ उसे दिखाई दिया. आरिफ ने सितारा को देखा. 'तुम्हारा इंतज़ार करते-करते बेचैनी इतनी बढ़ गयी कि मेरा जी घबराने लगा, तो सिकंदर के साथ तुम्हें खोजती यहां आ गयी. देखा तो यहां गोलियां चल

गज़ल

राजेंद्र तिवारी

अक्स से खौफ़ खाने लगे आईने ।
अब तो चेहरा छुपाने लगे आईने ॥
हो गये आजकल आदमी की तरह ।
झूठ को सच बताने लगे आईने ॥
जब भी देखा तो उभरी वही सूरतें ।
हमको हरदम पुराने लगे आईने ॥
नींद आने लगी पत्थरों पर मुझे ।
मेरे ख़ाबों में आने लगे आईने ॥
कोई देखे, न देखे तो हम क्या करें ।
हर जगह हर ठिकाने लगे आईने ॥

✍ "तपोवन", ३८-बी, गोविंद नगर,
कानपुर-२०८००६

रही थीं. मैं सारा मामला समझ गयी और झाड़ियों में दूर सिकंदर को छुपाकर बैठ गयी,' सितारा अपनी बड़ी-बड़ी आंखों, माथे पर चमकती सोने की बोर, और चेहरे पर दमकती मासूमियत के साथ बोल रही थी. और आरिफ, वह तो नया जीवन पाने से ज़्यादा यूँ सितारा को अपनी जान बचाते देख खुदा की रहमत को देख रहा था. खुदा उसके सामने था उसकी सितारा के रूप में. उसने सितारा को अपने सीने से लगा लिया, 'अब चलो जल्दी, यहां रुकना ठीक नहीं.' कुछ देर बाद सिकंदर गांव की ओर जानेवाले रास्ते पर था. वे दोनों चांदनी में डूबे रेगिस्तान में अपने सपनों की सड़क पर चले जा रहे थे. 'अब हम कल ही बापू को लेकर दूर देश में चले जायेंगे,' सितारा ने कहा. ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी और सिकंदर तेज़ी के साथ गांव की ओर दौड़ रहा था. आरिफ ने सितारा के कंधों पर पीछे से सिर टिकाते हुए उसे बाहों में जकड़े हौले से सिर हिलाया.

✍ 'आस्था', ६८/२८, न्यू कॉलोनी,

रामगंज, अजमेर-३०५००१

मो. : ८९५५५५४९६९/ ९४९४९८०३४

कथाबिंब/ जुलाई-सितंबर २०१० ॥ २९ ॥



‘संघर्षों के बीच लेखन की मुहिम’

डॉ. दिनेश पाठक ‘शशि’

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार खत्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, ‘आमने-सामने’। अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुत्री सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक ‘अंजुम’, राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्रिहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेन्द्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन ‘उपेंद्र’, भोला पंडित ‘प्रणयी’, महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद ‘नूर’, डॉ. तारिक असलम ‘तस्नीम’, सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान ‘बातिश’, डॉ. शिव ओम ‘अंबर’, कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल ‘हस्ती’, कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र ‘कंचन’ और कुंवर प्रेमिल से आपका आमना-सामना हो चुका है। इस अंक में प्रस्तुत है डॉ. दिनेश पाठक ‘शशि’ की आत्मरचना।

कहते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क में स्मृतियों का विपुल भंडार समाहित रहता है। बचपन से वृद्धावस्था तक न जाने कितनी घटनाएं उसकी जिंदगी में घटित होती हैं। उनमें से कुछ विस्मृत हो जाती हैं तो कुछ स्मृति-पटल पर पत्थर की लकीर की भांति स्थिर हो जाती हैं। विशेषकर वे घटनाएं जो मनुष्य की भावनाओं को अनजाने में आहत कर जायें, मन को गुदगुदा जायें या फिर प्रेरणा प्रदान कर जायें। बंगला के एक उपन्यासकार शरतचंद्र के उपन्यासों में बहुत सी ऐसी घटनाओं का जिक्र है जिनमें बचपन में एक लड़की और लड़के के बीच अनजाने में कहे गये वाक्य या घटनाओं ने जिंदगीभर उन्हें भावनात्मक रूप से जोड़े रखा, जैसे श्रीकांत उपन्यास की नायिका ने बचपन में अनजाने में करौंदे की माला बनाकर श्रीकांत के गले में वरमाला की तरह पहना दी थी जिसे श्रीकांत ताउम्र नहीं भूल पाया।

मेरे जीवन में भी बचपन से ही बहुत सारी ऐसी घटनाएं हुईं जिन्होंने जाने या अनजाने में मेरे बालमन को प्रभावित व स्पंदित किया। जिला बुलंदशहर के मेरे गांव रामपुर में तीन-तीन स्कूल होते हुए भी मेरी छोटे ‘अ’ से ‘झ’ तक की बारह खड़ी, पट्टी बुदक्का पर घर पर ही पिताजी ने पूरी करायी। उसके पीछे कारण यह रहा कि स्कूल में पहले ही दिन एक अध्यापक ने किसी बात पर मेरे पेट में जोर से चिकुटी काट दी जिससे फिर उस

स्कूल में जाना मेरे बालमन ने गवारा नहीं किया। भले ही स्कूल का समय होते ही मुझे घर के अंदर रजाइयों के बीच दुबकना पड़ता। फिर कक्षा तीन तक की पढ़ाई कन्या पाठशाला में हुई, जहां सहपाठिनें मुझे फर्श पर अपने-अपने पास बैठाने के लिए खींचातानी करती थीं। पिताजी संस्कृत एवं ज्योतिष के विद्वान थे। वे मुझे अपनी ही तरह संस्कृत का विद्वान बनाना चाहते थे, अतः कक्षा ६ पास करते ही उन्होंने मुझे सांगवेद संस्कृत महाविद्यालय नरवर, नरौरा (जो काशी वि.वि. के बाद दूसरे नंबर का संस्कृत महाविद्यालय था) में प्रवेश दिला दिया किंतु मेरे भाग्य में इंजीनियरिंग की पढ़ाई थी सो मैं वहां से दो-तीन महीने बाद ही अस्वस्थ होकर घर वापस आ गया और पुनः उसी विद्यालय में पढ़ने लगा। पिताजी द्वारा बनायी गयी जन्मपत्रिकाओं को सुंदर रूप में लिखना तथा सुंदर-सुंदर पुष्पों के पौधे लगाना और गांव में अमावस्या व पूर्णमासी के दिन संस्कृत के श्लोकों सहित श्री सत्यनारायण की कथा वांचना जब मैं कक्षा तीन में पढ़ता था तभी से मैंने प्रारंभ कर दिया था।



पिताजी संस्कृत के विद्वान और जीवन की व्यवहारिकता व सरलता में विश्वास करनेवाले थे तो मां, अनपढ़ व सपाट बयानी में विश्वास करनेवाली. बस किसी न किसी बात पर घर में माता-पिता में अक्सर ही वाक्युद्ध होने लगता जिससे मेरा बाल मन अंदर ही अंदर बहुत रोता. गांव के घर व घर की छतें तब कच्ची मिट्टी से बनी थीं, जो बरसात में टपकती थीं. बरसात में कभी-कभी तो अपनी और पिताजी की चारपाई को इधर से उधर सूखे में खिसकाने के चक्कर में सारी रात बीत जाती थी तो मेरा बालमन निर्धनता के दंश से पीड़ित रातभर जाने क्या-क्या सोचता रहता. जब मैं हाईस्कूल का छात्र था, तब भारत-पाकिस्तान के बीच युद्ध हो रहा था, मेरे बड़े भाई साहब भी आर्मी में हवलदार थे. रेडियो पर रोजाना मरनेवाले सैनिकों के बारे में सुन-सुन कर मेरा भावुक मन रो उठता था. मैं सोचने लगता कि आखिर दो देश आपस में लड़ते क्यों हैं. क्यों नहीं एक-दूसरे को सुख-शांति से जीने देते? इस तरह संवेदना एवं भावुकता बचपन से ही मेरी सहचरी रही है.

कक्षा छः में एक बार मैं अपने रिश्तेदार के यहां बुलंदशहर के एक गांव चित्सौन में गया था जहां एक कमरे में उस घर की एक हम उम्र लड़की मेरे इर्द-गिर्द चक्कर लगाती रही. पर जब मेरी ओर से कोई प्रतिक्रिया न हुई तो वह लड़की मुझे 'मूर्ख' कहकर पैर पटकते हुए कमरे से बाहर निकल गयी. जिसका कारण उस समय मेरी समझ में नहीं आया था या पिताजी द्वारा प्रतिदिन सोने से पूर्व दी गयी शिक्षा - 'मातृवत् पर दारेषु, पर द्रव्येषु लोष्वत् । आत्मवत् सर्व भूतेषु, यः पश्यति स, पश्यति।' ने मुझे कुछ भी ऐसा-वैसा करने से रोक रखा था. मेरा भावुक व संवेदनशील हृदय उस लड़की के व्यवहार के बारे में बहुत देर तक सोचता रहा था. इस घटना को मैं आज तक विस्मृत नहीं कर पाया हूं.

गांव में मेरे पड़ोस के एक भाई श्री रामपाल सिंह दिल्ली में सस्ता साहित्य मंडल में नौकरी करते थे, जहां से उपन्यास, कहानी, लेख एवं जीवनिर्णयों की बहुत-सी अच्छी-अच्छी पुस्तकें वे अपने छोटे भाई श्री नरेंद्र सिंह को लाकर दिया करते थे, जो मेरा कक्षा छः से आठ तक का सहपाठी था. उस समय नरेंद्र सिंह को उन साहित्यिक पुस्तकों में विशेष रुचि न होने के कारण

मैं ही उन पुस्तकों को उनके यहां अलमारी में सहेज कर रखता था. उनको पुस्तकालय की भांति अन्य लोगों को रजिस्टर में हस्ताक्षर कराकर पढ़ने को देता तथा स्वयं भी पढ़ता था. रवींद्रनाथ टैगोर, शरतचंद्र, विमल मित्र, रांगेय राघव, गौरीशंकर राजहंस, प्रेमचंद आदि अनेक लेखकों के उत्कृष्ट साहित्य को मैंने तभी पढ़ लिया था. गुलशन नंदा, ओमप्रकाश शर्मा और कर्नल रंजीत जैसे उपन्यासकारों के सामाजिक एवं जासूसी उपन्यास भी नरेंद्र सिंह के यहां से मैं पढ़ चुका था. अतः दसवीं पास करने के बाद सन् १९७३ में घर से दस कि.मी. दूर डिबाई जहां के कुबेर इंटर कॉलेज में मैं ग्यारहवीं का छात्र था, पहली बार किसी बड़े पुस्तकालय में घुसा तो वहां पराग, चंपक, लोटपोट, दीवाना, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान आदि पत्रिकाएं पढ़कर बहुत आनंद आया. उसी दिन, उसी वक्त मेरे दिमाग में एक बात कुलबुलाने लगी कि ऐसी रचनाएं तो मैं स्वयं भी लिख सकता हूं.

बस, घर आकर मैंने एक कहानी लिखी, पर पत्रिका में प्रकाशनार्थ किस तरह भेजी जाती है, इस बात की जानकारी संगी-साथी ही नहीं, हिंदी के अध्यापक भी न दे सके तो मैंने स्वयं ही फुलस्केप कागज़ पर लिखकर वह रचना लोटपोट को भेज दी. कुछ दिन बाद रचना के साथ जो कागज़ लौटे उनसे निराशा की जगह प्रसन्नता ही अधिक हुई. क्योंकि लोटपोट के संपादक ने लोटपोट में प्रकाशन हेतु भेजी जानेवाली रचनाओं की पांडुलिपि को किस प्रकार लोटपोट में भेजा जाय, ये नियम भी भेजे थे. फिर क्या था, एक रास्ता मुझे मिल गया था.

एक दिन मैं, शाम को विद्यालय से वापस आ रहा था तो रास्ते में ही मुझे पता चला कि मेरी छोटी बहन किरन, जो मुझसे मात्र तीन वर्ष छोटी थी, कुएं में गिर जाने से मर गयी है तो मेरा भावुक मन रो पड़ा और मेरे मुंह से एक कविता की कुछ पंक्तियां स्वतः ही फूट निकलीं - 'थी एक किरन जो आंखों की, जाने विलुप्त हो गयी कहां. फूलों सी सुंदर बाला वह, मेरी बहन खो गयी कहां.' (यानि तीन भाई व तीन बहनें, कुल छः में से अब हम पांच ही रह गये)

सन् १९७५ में इंटरमीडिएट पास करने के बाद सेठ गंगासागर जटिया पॉलीटेक्निक खुर्जा में त्रिवर्षीय विद्युत

साया

दादीजी की अस्वस्थता जितनी अधिक होती जा रही थी उससे भी अधिक इस स्थिति में बात-बात पर उनका चिड़चिड़ापन पूरे परिवार को असहनीय होता जा रहा था.

उनके इस व्यवहार से तंग आकर घर के लोग ही नहीं पास-पड़ोस के लोग भी ऊबने लगे थे.

"लगतता है अमृत पीकर आयी है बुढ़िया. एक सौ पांच साल की हो गयी फिर भी....."-आस-पड़ोस की महिलाएं अपने विचार व्यक्त किये बिना न रहतीं.

किसी चीज की ज़रूरत पड़ने पर दादी बार-बार एक ही बात को दुहराने लगतीं तो तंग आकर छुटका बोल पड़ता - "ओफ़ो दादीजी आप तो बेमतलब का शोर मचाने लगती हो थोड़ी सी तसल्ली भी रखा करो."

दादीजी पूरी रात आवाज़ लगा-लगाकर सबकी नींद में खलल डालती रहतीं मगर ऐसी हालत में भी पापा पूरी तरह शांत बने रहकर दादीजी की सेवा में तत्पर थे. उन्हें न तो दादीजी द्वारा बार-बार पुकारे जाने पर गुस्सा आता और न दादीजी द्वारा रात भर जगाये जाने पर और न बच्चों जैसी जिद करने पर ही.

इसके बावजूद आखिर एक दिन दादीजी चल बसीं. पापा एकदम से गुमसुम हो गये. आखिर जब उनकी चुप्पी मुझसे बर्दाश्त नहीं हुई तो मैंने टोक ही दिया. - "क्या बात है पापा, दादीजी के गुजर जाने के बाद से आप कुछ ज़्यादा ही गुमसुम से हो गये हैं. आखिर एक सौ पांच साल की थीं दादी. उन्हें तो जाना ही था. ऐसी स्थिति में भी आपने उनकी जितनी सेवा की उतनी हर कोई नहीं कर सकता. फिर भी आप....."

"तू ठीक कह रहा है बेटा." - पापा ने अपनी चुप्पी तोड़ी- "लेकिन तेरी दादी जैसी भी थीं, जब तक ज़िंदा रहीं मुझे अपने ऊपर उनका 'साया' प्रतीत होता था और मैं उनके सामने अपने आपको बहुत छोटा बच्चा समझता रहता था. लेकिन उनका साया अपने ऊपर से उठ जाने से अब मैं ही घर का सबसे बुजुर्ग मुखिया बन गया हूँ. बुजुर्ग का साया जब तक अपने ऊपर रहता है कितना सुकून मिलता है. यह बात तुम मेरे चले जाने के बाद समझोगे बेटे."

जीत

वह एक पुरुष है.

और वह एक स्त्री.

स्त्री ने पुरुष को भरपूर नज़रों से देखा और पुरुष पर मोहित हो गयी. एकांत और उचित अवसर जान उस अनुभवी स्त्री ने पुरुष को आमंत्रित किया -

"आओ इस जीवन का भरपूर उपभोग करें. प्रकृति ने शायद हम दोनों को इसीलिए मिलाया है."

"नहीं, मैं पहले ही किसी के साथ वचनबद्ध हूँ. - रूप, लावण्य की साम्राज्ञी, उस स्त्री की ओर निहारते हुए पुरुष मुस्कराया.

पुरुष का उत्तर सुनकर स्त्री ने घोर आश्चर्य के साथ उसे घूरा. पुरुष के इस व्यवहार पर उसे विश्वास नहीं हो पा रहा था. उसने अपने हाथ में चिकोटी काटी, कहीं वह सपना तो नहीं देख रही!

"मुझे अपनी हार स्वीकारते हुए भी आज प्रसन्नता है पुरुष, क्योंकि इसमें भी एक स्त्री की ही जीत हुई है आज. पहली बार एक स्त्री की जीत. तुम्हारी पत्नी की जीत."

लक्ष्य

मेरा छोटा पुत्र अचानक ही मेरे गले में अपनी नन्हीं बाहें डालते हुए बोला -

"पापा ये इमरान के पापा जैसे 'अल्ला हो अकबर' बोलते हैं, वैसे ही हमें क्या बोलना चाहिए?"

भोलेपन से पूछा गया उसका गूढ़ प्रश्न सुन, मेरे मस्तिष्क में कई देवी-देवताओं के नाम उभरे, पर जल्दबाजी में, बालक के कोरे कागज़ सरीखे दिल पर मैं कोई भी ऐसी इबारत नहीं लिखना चाहता था जो आगे चलकर उसे दिग्भ्रमित करे.

मैं उसे मकान के आंगन में ले गया और उससे पूछा - "बेटे, इस मकान की छत पर जाने के लिए कितने रास्ते हैं बता सकते हो?"

उसने अपने ज्ञान के अनुसार चारों कोनों में बने चारों जीने (सीढ़ियों) और पास ही कोने में रखी एक बांस की सीढ़ी की ओर देखा, फिर ताली बजाते हुए उछलने लगा - "समझ गया, पापा मैं समझ गया."

इंजीनियरिंग डिप्लोमा में प्रवेश लेने पर पहली बार अकेले, घर से दूर रहने का अवसर आया किंतु तब तक पराग, दीवाना, लोटपोट, चंपक, आदि बाल पत्रिकाओं के साथ-साथ सारिका, धर्मयुग, सा. हिंदुस्तान, कादंबिनी, नवनीत आदि जैसी विशुद्ध साहित्यिक पत्रिकाएं मेरी संगी-साथी बन चुकी थीं. 'दीवाना' बाल पत्रिका के पत्र-मित्र स्तंभ में छपे एक पते पर संपर्क करने पर, झांसी के रहनेवाले बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री किशोर श्रीवास्तव, जो वर्तमान में कृषि विस्तार निदेशालय, राजभाषा विभाग में सहायक निदेशक के पद पर सेवारत हैं, मेरे पत्र-मित्र बन गये.

उस दौरान हर छोटी-बड़ी बात मुझे प्रभावित करती और मैं उस पर कविता, कहानी, हास्य कहानी, लघुकथा आदि लिखकर कॉपी में कैद कर लेता.

पॉलीटेक्निक के मशीन शॉप अनुदेशक श्री राधेश्याम पाठक, स्वांतः सुखाय कविताएं लिखा करते थे, उनके निवास पर मैं अपने सहपाठी श्री भानुप्रताप गौतम एवं श्री के. एस. चौहान को लेकर अक्सर ही कविताएं सुनने-सुनाने का कार्यक्रम बनाता.

खुर्जा में, मैं जिस मकान में किराये पर रहकर पढ़ रहा था, उस मकान के मालिक-मकान, रसायनशास्त्र के प्रोफेसर अशोक कुमार थे जो अक्सर ही अपनी पत्नी की बेरहमी से पिटाई किया करते थे. यह बात मेरे भावुक मन को बहुत झकझोरती थी. एक नारी पर होते इस अत्याचार को देखकर मेरे मन में आक्रोश पैदा होता जिसके कारण मैं एक दिन प्रोफेसर के कमरे में जाकर यह प्रश्न दाग बैठा कि एक सभ्य एवं पढ़ा-लिखा प्रोफेसर अपनी पत्नी के साथ ऐसा अमानवीय व्यवहार क्यों करता है?

उसी मकान के सामनेवाले घर में सुंदर और चुलबुली सात बहनें थीं उनको लक्ष्य कर मैंने एक हास्य रचना 'वह दिन' लिखी, जिसे झांसी से प्रकाशित 'मृगपाल' मासिक पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजने पर हास्य-प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार प्रदान किया गया. एक कविता पॉलीटेक्निक की पत्रिका 'टैक मैग' में छपी तो सहपाठी यह मानने को तैयार ही नहीं हुए कि 'कार्बन और भगवान' में तुलनात्मक सामंजस्य सिद्ध करनेवाली यह कविता स्वयं मैंने लिखी है.

सन् १९७८ में विद्युत इंजीनियरिंग का त्रिवर्षीय डिप्लोमा पूर्ण करने के बाद, परीक्षाफल आने तक लगभग छः माह तक मैंने दसवीं के छात्र-छात्राओं को ट्यूशन पढ़ायी और उनके व्यवहार-अनुभवों पर कहानियां लिखने एवं पत्र-पत्रिकाओं में भेजने का कार्य भी किया. सन् १९७८ में धामपुर (बिजनौर) से प्रकाशित होनेवाली 'युवा हिंद', आगरा से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'रूप कंचन', ग्वालियर से प्रकाशित होने वाली 'मनिया', ललितपुर से निकलनेवाली पत्रिका 'किशोर कांति', झांसी से प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'मृगपाल' आदि में मेरी कहानियां प्रकाशित हुईं. सन् १९७९ में बच्चों की शरारत देखकर एक कहानी लिखी 'सजा' जिसे 'चंपक' में प्रकाशनार्थ भेज दिया. मेरा उस समय खुशी का ठिकाना न रहा जब पंद्रह दिन बाद ही 'चंपक' ने मेरी उस कहानी को प्रकाशनार्थ स्वीकृत करते हुए चालीस रुपये के वाउचर पर हस्ताक्षर करके वापस करने एवं अपना फोटो, परिचय भेजने हेतु पत्र लिखा.

उसी दौरान मैंने भूत-प्रेत की एक घटना देखी तथा उस पर कहानी लिखी 'चुड़ैल' जिसे पत्रिका 'भूभारती' ने पारिश्रमिक सहित प्रकाशित किया.

सन् १९७९ में ही मैंने गुलमर्ग इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड, फरीदाबाद में क्वालिटी कंट्रोल इंस्पेक्टर के पद पर सर्विस ज्वाइन कर ली थी. फरीदाबाद में साहित्यकार श्री जगन्नाथ गौतम से मुलाकात हुई. फैक्ट्री से ड्यूटी ऑफ होते ही मैं गौतम जी के 'गौतम कटपीस हाऊस' पर पहुंच जाता, जहां दुकान बंद होने तक गौतम जी के साथ साहित्यिक गपशप होती. फिर गौतम जी की कोठी पर एक साथ भोजन करने के बाद स्थानीय साहित्यकारों श्री अशोक गुप्ता, बलराम तोमर, अनिल कौशिक, अंजना अनिल, खामोश सरहदी, आदर्श मोहन सारंग, स्वामी वाहिद काजमी, गुलशन बालानी, विश्वबंधु आदि से मुलाकात एवं साहित्यिक गपशप हेतु चल पड़ते तो कभी बाटा चौक स्थित पार्क में बैठकर देश-विदेश के साहित्यकारों व पत्र-पत्रिकाओं में छपी उनकी रचनाओं पर बातचीत करते रहते.

रात को १-२ बजे गौतम जी से विदा लेकर ३ कि.मी. साइकल चलाकर मैं अपने किराये के मकान पर पहुंचता फिर बैठ कर कहानियां लिखता. पत्र-पत्रिकाओं को

भेजने के लिए हाथ से लिखकर कहानियां फेयर करता और उस दिन डाक से आये पत्र-पत्रिकाओं को देखता व पत्रों का जबाव लिखता. फरीदाबाद में, मैं जहां भी किराये का मकान लेकर रहा वहीं मालिक-मकान को मुझसे तीन बातों की नाराज़गी रही, पहली मेरी प्रतिदिन इतनी ढेर सारी डाक क्यों आती है. दूसरी, रात के २-३ बजे तक बिजली क्यों जलाता हूं तथा तीसरी - मेरे मिलनेवाले बहुत आते हैं.

सन १९७९-८० में फैक्ट्री के माहौल एवं मजदूरों के शोषण से उत्पन्न आक्रोश ने मुझे कई कहानियां लिखने हेतु मजबूर किया. 'रोटी के लिए' लघुकथा जो जून-७९ में तारिका पत्रिका में छपनेवाली मेरी पहली लघुकथा थी. उसके बाद कादंबिनी में समस्यापूर्ति के अंतर्गत मेरी कविता को द्वितीय पुरस्कार मिला. ११ अप्रैल १९८० को प्रथम बार कहानी के प्रसारण हेतु आकाशवाणी रोहतक से अनुबंध पत्र मिला तो बस, फिर क्या था, मैंने अपनी एक कहानी 'अनिर्णीत राहें' को कंठस्थ कर लिया ताकि रिकॉर्डिंग में हिचक न हो. उसके बाद तो हर दो महीने के अंतराल से आकाशवाणी पर कहानियों की रिकॉर्डिंग का सिलसिला चल निकला.

मेरी सभी कहानियों के पात्र मेरे आस-पास के जीते-जागते व्यक्ति ही रहे हैं, थोड़ी-बहुत कल्पना के मिश्रण के साथ. अपने सहपाठी के भाई द्वारा विदेशी लड़की से शादी कर लेने पर घर में उत्पन्न वातावरण पर मैंने कहानी लिखी - 'दोहरे मापदंड' जो आकाशवाणी व तारिका में प्रसारित/प्रकाशित हुई. गांव में प्रधान पद हेतु हुए हत्याकांड पर मेरी कहानी- 'इतिहास का दर्द' जन्मी जो आकाशवाणी से प्रसारित व आकाशवाणी पत्रिका में प्रकाशित भी हुई. यही कहानी जब अगस्त-८५ की कादंबिनी में प्रकाशित हुई तो विभिन्न जगहों से ढेरों प्रशंसा पत्र मिले.

सन १९७९-८० में ही फैक्ट्री की नौकरी के साथ-साथ 'राष्ट्रीय श्रमिक' पाक्षिक का सह-संपादन भी किया तथा फिर श्री जगन्नाथ गौतम व हरिहर प्रसाद श्रीवास्तव के साथ मिलकर 'विजय यात्रा' साप्ताहिक भी निकाला जिसमें रात-रात भर जागकर सामग्री तैयार करना, डमी बनाना, प्रूफ पढ़ना फिर बेचने का भी प्रबंध आदि कार्यों ने काफी खट्टे-मीठे अनुभव कराये.

अप्रैल १९८१ में मेरी नियुक्ति मध्य रेलवे में चार्जमैन

के पद पर हो जाने पर मुझे फरीदाबाद छोड़ना पड़ा और उसी के साथ 'विजय यात्रा' साप्ताहिक की यात्रा भी स्थगित हो गयी.

३० जून १९८२ को कवि श्री चंद्रपाल शर्मा 'रसिक हाथरसी, की ज्येष्ठ पुत्री 'शशि' जो विवाह पूर्व लेख व कहानियां लिखा करती थी के साथ प्रणय हो जाने पर हम दोनों अपनी-अपनी रचनाएं एक दूसरे को दिखाकर एवं आवश्यक हुआ तो उचित संशोधन करके पत्र-पत्रिकाओं को भेजने लगे. शादी के बाद अपने नाम के साथ पत्नी का नाम जोड़ लेने पर गुड़गांव के मेरे साहित्यकार मित्र श्री ज्ञानप्रकाश विवेक ने काफी बुरा महसूस किया, मुझे लताड़ा भी.

सन १९७८ से ८५ तक का दौर ऐसा रहा जब प्रत्येक महीने अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं छपती रहीं, फिर सन १९८६ में पत्नी का सीधा हिस्सा सिर से पैर तक पक्षाघात का शिकार हो जाने के कारण डॉक्टरों के पास भागा-दौड़ी में लेखन प्रभावित हुआ.

उसके बाद पत्नी के ठीक होने पर लेखन ने फिर से गति पकड़ी और मेरा कहानी संग्रह 'अनुत्तरित' और दो बाल-कहानी संग्रहों का, साथ ही पत्नी के कहानी संग्रह - 'रिशतों की सुगंध' व बाल उपन्यास - 'निखिल और ग्रहों की अनोखी दुनिया' का प्रकाशन हुआ.

कहानी लेखन महाविद्यालय अंबाला छावनी के निदेशक डॉ. महाराज कृष्ण जैन तथा उनकी पत्रिका 'तारिका' मासिक ने एवं आकाशवाणी की कार्यक्रम अधिशासी (वर्तमान में डी.डी.जी) डॉ. अलका पाठक का मेरे साहित्यिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है. डॉ. अलका पाठक की प्रेरणा से मैंने आकाशवाणी से प्रसारण हेतु नाटक लिखे, झलकियां तथा कहानियां लिखीं एवं ब्रजभाषा में भी रचनाओं का सृजन किया. मेरे दोनों भाई व भाभियों ने भी मुझे पुत्रवत स्नेह देते हुए सदैव मुझे प्रेरित किया है.

सन १९९८ में पत्नी का सीधा हिस्सा फिर से पक्षाघात का शिकार हो गया और लेखन की गति अवरुद्ध हो गयी. पत्नी पूरी तरह ठीक भी नहीं हो पायी थी कि १० नवंबर २००० को जब मैं ड्यूटी से घर पहुंचा तो पता चला कि पत्नी का लिखना, पढ़ना एवं बोलना सब कुछ समाप्त हो गया है. साथ ही, कभी भी फिट्स पड़ने लगे जिसके लिए कई-कई सप्ताह तक आई.सी.यू.

में रहना पड़ता और कई हफ्तों में चलने लायक हो पाती पत्नी. घर में सबसे छोटा होने के कारण माता-पिता और बहन-भाइयों व भाभियों ने भी बहुत ही प्यार-दुलार दिया था मुझे. पर अब दफ्तर के साथ-साथ घर के पूरे काम की जिम्मेदारी भी मेरे ही ऊपर आ गयी. विद्यार्थी जीवन में बड़े भाई साहब ने ही मेरे सारे खर्चे वहन किये और मुझे हर प्रकार से संबल प्रदान किया. अब अस्पतालों में मेरे साथ पूरी-पूरी रात जागते हुए बितानेवाले मेरे ससुर साहब ने मुझे पग-पग पर आर्थिक व मानसिक संबल प्रदान किया है. पिछले दस वर्षों से यही क्रम जारी है. आगरा के न्यूरो फिजीशियन का इलाज जारी है. पत्नी के स्वास्थ्य लाभ हेतु जिसने भी जो भी बताया, मैंने वही किया. यंत्र, तंत्र और रात के बारह बजे तक बैठकर मंत्रों का जाप भी मैंने स्वयं किया. शायद इसीलिए पत्नी आज तक ज़िंदा भी है, क्योंकि मेरा ऐसा विचार है कि ग्रह (सितारे), पूरी ज़िंदगी मनुष्य को प्रभावित करते रहते हैं. ऐसे अनेक अनुभव ज़िंदगी के मैंने इस दौरान किये भी हैं.

जब बड़ा पुत्र सोलह वर्ष का था तथा छोटा ग्यारह वर्ष का, पढ़ाई के साथ-साथ दोनों ने मिलकर कई वर्ष तक किचिन व घर के अन्य कामों में मेरा हाथ बंटया है. अब बड़ा पुत्र बडोदरा में नौकरी पर और छोटा अमरावती विश्वविद्यालय में एम.सी.ए. का छात्र है. घर पर मैं और पत्नी. पत्नी, जो आज भी पूरा एक वाक्य नहीं बोल पाती. बोलने का बहुत प्रयास करती हैं पर जब असफल हो जाती हैं तो विवशतावश उनके नेत्रों से झर-झर आंसू बहने लगते हैं और वे फूट-फूट कर रोने लगती हैं तो मैं भी अपने आप को रोक नहीं पाता. घर व दफ्तर के सभी कामों में चौबीस घंटे कब बीत जाते हैं पता ही नहीं चलता मुझे. फिर भी रात को थोड़ा बहुत समय चुराकर लिखने के प्रयास स्वरूप अब तक मूल १४ व मेरे द्वारा संपादित १५, कुल २९ पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है. जीवन का संघर्ष जारी है. देखना यह है कि ऊपरवाला कब तक मेरी परीक्षा लेता है.

✍ २८, सारंग विहार,
पोस्ट- रिफायनरी नगर, मथुरा-२८१००६.
मो. ९४१२७२७३६१, ९५२८८४८७१७

लघुकथा

चमत्कार

✍ जसविंदर शर्मा

उसने मूर्तियों की दुकान से पीतल की बनी चूहे की एक मूर्ति खरीदी और अपने घर की तरफ चल पड़ा. कुछ देर बाद उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने अपने पीछे मुड़ कर देखा. सैंकड़ों की संख्या में पतले-मोटे, लंबे-नाटे तथा छोटे-बड़े चूहे उसके पीछे चले आ रहे थे. उसने सोचा कि न हो उसकी पीतल की मूर्ति में कुछ जादुई या तिलिस्मी बात हो.

वह व्यक्ति घबरा गया. मूर्ति को छोड़ भी नहीं सकता था. वह आदमी तेज दौड़ने लगा. चूहे भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे थे. दौड़ते-दौड़ते वह एक भरी नदी के पास पहुंच गया. इससे पहले इतने सारे चूहे उसके पास पहुंचते, उसने फटाक से उस पीतल की बनी चूहे की मूर्ति उस तेज बहती नदी में फेंक दी. उसकी आंखें फटी की फटी रह गयीं जब उसने देखा कि उसके पीछे आ रही चूहों की विशाल फौज धड़ाम से नदी में कूद गयी. उसके माथे पर पसीने की लहर फूट आयी थी. ऐसी अजीबोगरीब बात किसी और को बताता तो कौन उसका यकीन करता. कुछ सोचकर उसकी आंखों में चमक आ गयी. वह तेजी से वापिस उसी बाजार में पलटा. उसी मूर्तियों वाली दुकान पर पहुंचकर बोला. 'आपके पास आज की सरकार के किसी नेता की मूर्ति है ?'

✍ ५/२ डी, रेल विहार, मंसादेवी,
पंचकुला-१३४१०९

निवेदन

इस अंक के साथ जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है उनसे निवेदन है कि शीघ्र ही अपने ग्राहक शुल्क का नवीनीकरण करा लें.

-संपादक



‘साहित्य के रास्ते में शॉर्टकट नहीं होते!’

✍ प्रेम जनमेजय

(प्रख्यात व्यंग्यकार श्री प्रेम जनमेजय से ‘कथाबिंब’ के लिए सुश्री मधु प्रकाश की बातचीत.)

■ आपने लेखन के लिए व्यंग्य विधा को ही क्यों चुना?

मधुजी, मुझे नहीं लगता है कि कोई सृजनशील, अपनी रचनात्मकता के प्रति गंभीर एवं सामाजिक सरोकारों से जुड़ा कोई रचनाकार, सायास किसी विधा को चुनता है. यदि वे सायास किसी विधा को चुनते हैं तो वे उसे अधिक देर तक निभा नहीं पाते हैं. कोई विधा, प्रचलित है बाज़ार में उसकी मांग है, संपादक उसके लिए आपको ललचा रहे हैं तो उस आधार पर रचना का सृजन करना मेरे लिए वैसा ही है जैसे बाज़ार के आधार पर किसी उत्पाद को प्रस्तुत करना. ऐसे में आप रचना की मांग से नहीं बल्कि बाज़ार की मांग से संचालित होते हैं और यदि आप किसी से संचालित होते हैं तो अपनी मौलिकता की रक्षा नहीं कर पाते हैं. रचनात्मक सृजन एवं किसी उत्पाद के निर्माण में बहुत बड़ा अंतर होता है. बाज़ार को ध्यान में रखकर तैयार किये गये उत्पाद का एकमात्र लक्ष्य अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है. अब यदि आप बाज़ार की मांग से आकर्षित हो लेखन कर रहे हैं तो निश्चित ही आप सर्वेक्षण करेंगे कि बाज़ार में आजकल क्या चल रहा है. व्यंग्य ने भी ऐसे ही अनेक रचनाकारों को आकर्षित किया. परसाई, जोशी, शुक्ल एवं त्यागी ने अपनी सशक्त रचनाओं के माध्यम से व्यंग्य के एक विशाल पाठक वर्ग का निर्माण किया. साहित्य को सीधे पाठक से जोड़ा. इससे पूर्व कविता ने अपनी लय और पाठकों से सीधे जुड़ने के कारण स्वयं को जोड़ा था. हर रचनाकार चाहे गद्य में कितना भी सशक्त रहा



हो वह अपनी शुरुआत कविता से ही करता है. इसके पीछे यह कारण तो है ही कि रोमानी मन कविता की ओर जुड़ता है और उसने मुझे भी आरंभ में जोड़ा. जैसे हिंदी का हर लेखक अपना आरंभिक लेखकीय जीवन, काव्य लेखन के साथ करने के लिए विवश है, मैंने भी किया. परंतु कविता के साथ कहानी की भी शुरुआत हो गयी. उन दिनों मैं नवीं कक्षा में पढ़ता था और विज्ञान का छात्र था. हमारे अंग्रेजी के अध्यापक श्री बत्तरा के प्रयत्नों के फलस्वरूप पहली बार किसी सरकारी विद्यालय ने अपनी पत्रिका निकालने का स्वप्न पूरा किया. मैंने उस पत्रिका में अंग्रेजी की एक कविता के माध्यम से अपना तुच्छ योगदान दिया. कविता जब प्रकाशित होकर आयी तो अपनी ही कविता को छपा देखकर तथा उसकी प्रशंसा सुनकर मन और रचनाएं लिखने को प्रेरित हुआ. गर्मी की छुट्टियां होने वाली थीं और अध्यापक पढ़ाने में कम तथा अपने रजिस्टर और डायरियां लिखने में अधिक रुचि ले रहे थे. ऐसे में पिछली बेंच पर बैठकर मैंने और मेरे सहपाठी मित्र सुदर्शन शर्मा ने एक कहानी लिखी ‘छुट्टियां’. सुदर्शन अब इस दुनिया में ज़िंदा नहीं हैं और न ही उसके साथ लिखी वह कहानी ही किसी पत्रिका के पन्नों में ज़िंदा है, पर उसकी यादें आज भी किसी ताज़ा रचना की तरह ज़िंदा हैं. विज्ञान की पढ़ाई तथा दोबारा पत्रिका न प्रकाशित होने की विवशता ने उस कहानी को किसी अनाम कोने में जैसे गुम कर दिया, पर मेरे अंदर लिखने की इच्छा अपने पंख तलाशती रही. ग्यारहवीं की परीक्षा देने के बाद मेरे पास कुछ

करने को न था. बात १९६६ की है. उन दिनों इंजीनियरिंग आदि परीक्षाओं के लिए गर्मियों की छुट्टियों का बलिदान नहीं करना पड़ता था. मेरे अंदर का लेखक फिर जागा और मैंने एक प्रेम-कथा लिखी 'कल, आज और कल.' मुझे नहीं लगता कि सृजन की दुनियां में आप तय करके मौलिक रचनात्मक लेखन कर सकते हैं. तयशुदा लेखन आपकी मौलिकता, आपकी विशिष्टता तथा आपके साहित्यिक व्यक्तित्व का हनन करता है. जो 'रचनाकार' मात्र किसी व्यावसायिक समझौते के तहत किसी विधा को अपनाता है या लेखन करता है, वह अपने साहित्यिक दायित्व को नहीं समझता है. मेरे लिए लेखन न तो दिल बहलाव का साधन है न रोजगार और न यश प्राप्ति की अदम्य लालसा का वाहक. मैं यह मानता हूँ कि रचनाकार की प्रकृति, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण तथा उसकी संवेदनशीलता का स्तर उसके लेखकीय व्यक्तित्व को तय करते हैं.



मधु प्रकाश

मेरे माता-पिता ने हम तीनों भाइयों को आरंभ से अनुचित को न सहने, सत्य पर दृढ़ रहने, सात्विक क्रोध को अभिव्यक्त करने तथा असीम विषम परिस्थितियों में भी किसी के सामने हाथ न पसारने के जो संस्कार दिये और संयोग से अपने लेखन के शैशव में वरिष्ठ रचनाकारों से जो साहित्यिक संस्कार मिले उन्हीं कारणों से मेरा व्यंग्यकार व्यक्तित्व बना. मेरा मानना है कि व्यंग्य लेखन अन्य विधाओं से भिन्न प्रक्रिया की मांग करता है. व्यंग्य आपको बेचैन अधिक करता है. अधिकांशतः सामयिक घटनाएं प्रेरक बिंदु होने के कारण व्यंग्य रचना अन्य विधाओं की अपेक्षा अपने जन्म के लिए अधिक जल्दी में होती है. मैंने अन्य विधाओं में भी लिखा है और मेरा यही अनुभव है. व्यंग्य लेखन की प्रक्रिया में मैंने अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक बेचैनी का अनुभव किया है. इस बेचैनी को जब तक मैं कागज़ पर उतार नहीं लेता हूँ चैन नहीं आता है.

■ आप व्यंग्य विधा को चुनौती के रूप में लेते हैं, या सहज रूप में या फिर मुख्य धारा के विकल्प के रूप में ?

अच्छा रचनात्मक लेखन किसी भी विधा में लिखा

जायेगा एक चुनौती ही होगा. मेरे विचार से न तो कोई विधा महत्वपूर्ण होती है और न ही कोई माध्यम, महत्वपूर्ण होता है कथ्य. पहले आता है कि आप कहना क्या चाहते हैं और बाद में आता है कि आप उसे कहते कैसे हैं. चाहे वह कवि हो, कहानीकार हो, नाटककार हो या व्यंग्यकार - सभी हैं तो मूलतः साहित्यकार. व्यंग्य-लेखन साहित्य लेखन से अलग की वस्तु नहीं है. क्या व्यंग्यकार के सामाजिक सरोकार वही नहीं हैं जो एक कथाकार, कवि या नाटककार के हैं ? इसलिए

व्यंग्य विधा मेरे लिए अभिव्यक्ति का वह माध्यम है जो मेरी अपनी प्रकृति के अनुरूप है तथा जिसमें मैं सहज अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति कर सकता हूँ. मैं बेहतर रचना को ही बेहतर मानता हूँ. कोई विधा किसी रचना को श्रेष्ठ नहीं बनाती है अपितु श्रेष्ठ रचनाएं किसी विधा को श्रेष्ठ बनाती हैं. हमारी युवा पीढ़ी में जो यह भ्रम है कि वे व्यंग्य के नाम पर जो भी लिखेंगे वह श्रेष्ठ

होगा, उचित नहीं है. वैसे तो रचना अपनी विधा स्वयं तलाश लेती है. मुझे व्यंग्य के माध्यम ये स्वयं को अभिव्यक्त करना अधिक सहज लगता है. जब समाज अनैतिक होता है और नैतिकता के ठेकेदार नैतिकता के छद्म में अपने अनैतिक कर्म सफल बनाते हैं तभी तो व्यंग्यकार की रचनात्मक भूमिका जन्म लेती है. आज राजनीति, समाज, धर्म, साहित्य आदि में जो मूल्यहीनता की स्थिति है तथा जिस प्रकार हमारी वर्तमान व्यवस्था आक्रोश के स्थान पर पलायन के भाव को भरना चाहती है, आर्थिक प्रगति के नाम पर विरोध के प्रजातांत्रिक अधिकार को कुंद करना चाहती है उसके चलते व्यंग्य की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है. जहां तक मुख्यधारा की बात है, इसे जो तय कर रहे हैं करते रहें. मेरी दृष्टि में मुख्यधारा मानव समाज की बेहतरी के लिए सृजन किया गया आपका रचनात्मक प्रतिबद्ध लेखन है. अच्छे लेखन का कोई विकल्प नहीं होता. जो किसी विकल्प के रूप में रचनात्मक सृजन करते हैं वे जीवन भर स्टेपनी बने रहते हैं.

■ लेखन आपकी पहचान है या ज़रूरत ?

लेखन आत्माभिव्यक्ति की मेरी विवशता है.

लेखक भौतिक दृष्टि से बहुत ही कमजोर इंसान होता है। बहुत कम लेखक होंगे जो व्यवस्था का विरोध करते हों और व्यवस्था उन पर अत्याचार करे तो वे अपना विरोध अपनी कलम की तरह ही तीव्र रख सकें। दांत किटकिटाते हुए, आंखें लाल किये, दुश्मन के दांत खट्टे करने वाले हों। रचनाकार के, हो सकता है उसी ताकतवर दुश्मन को सामने देख समस्त अंग कांपने लगें, पर उसकी कलम में विरोध का स्वर अनेक सशक्त लोगों को विरोध का संस्कार दे सकता है, लड़ने को प्रेरित कर सकता है। लेखन मेरी दिनचर्या का हिस्सा हो गया है। जैसे बिन खाये मन भटका-भटका रहता है, बिन सोये तबियत गड़बड़ा जाती है, बिन नहाये शरीर बेचैन हो जाता है और बिना पानी के सब सूख लगने लगता है वैसे ही बिना लिखे अपना जीवन निरर्थक लगने लगता है। स्वस्थ एवं लंबे जीवन के लिए जैसे आपकी दैनिक आवश्यकताएं आवश्यक हैं वैसे ही मेरे लिए लेखन भी आवश्यक है। बिन सोये मेरा काम चल सकता है पर यदि रचना दिमाग में अपना खाका बना रही है तो उसे लिखे बिना नींद नहीं आयेगी। आज का समय विसंगतियों से भरा हुआ है और चकाचौंध में सामाजिक सरोकार तथा मानवीय मूल्य धुंधलाते जा रहे हैं। अस्मिता पर लुके-छिपे हमले हो रहे हैं। ये सब ईमानदार मस्तिष्क पर निरंतर अपने प्रभाव छोड़ते रहते हैं। आपका अवचेतन कभी भी नहीं सोता है। यह दीगर बात है कि कुछ महानुभाव उसके जागरण को महत्व ही नहीं देते हैं। पर लेखन-कर्म अपनाते ही आप अपने अवचेतन की सक्रियता को उपेक्षित नहीं कर सकते। लेखन-कर्म को ईमानदारी से अपनाते ही आप अति संवेदनशीलता के रोगी हो जाते हैं। वैसे इसे इस प्रकार कहना अधिक उचित होगा कि अधिक संवेदनशील होने के कारण आपको लेखन का रोग लगता है। जिस बात को लोग हवा में उड़ा देते हैं और यह लेखक नामक 'अव्यवहारिक' जीव स्वयं तो बेचैन होता है दूसरों को भी करता है। मैं भी ऐसा ही 'अव्यवहारिक' जीव हूँ। पत्नी अनेक बार कांतासम्मत उपदेश दे चुकी है कि संसार तो ऐसे ही चलेगा, तुम क्यों अपनी जान हलकान करते हो!

पर यहां आलम यह है कि समाज में घटित किसी विसंगति को देख-पढ़-सुनकर 'नींद क्यों रात भर

आती नहीं' के सवाल पत्नी को घेरने लगते हैं। कोई विचार जब कौंधता है तो जब तक वह आकार नहीं ले लेता मन बेचैन रहता है और उसकी बेचैनी देख पत्नी बेचैन रहती है।

■ आपको अन्य लेखकों की कौन सी बात खटकती है और आप उससे कैसे निपटते हैं ?

पहले अपने से निपट लूं तो दूसरों से निपटने की सुध लूं। पहले तो मैं यह जानने की प्रक्रिया में हूँ कि मेरी कौन-सी बात औरों को खटक रही है। मैं व्यंग्यकार को समाज का निंदक मानता हूँ और समाज ने कबीर की सलाह मानकर उस निंदक की कुटिया अपने आंगन में छवा रखी है। विसंगतियों पर प्रखर एवं प्रत्यक्ष आक्रमण करने में कबीर मेरे आदर्श हैं। उनके व्यंग्य में कहीं भी हास्य नहीं है। मैंने अपने आदर्श रचनाकार की सलाह मानी है और मैं समाज में व्याप्त विसंगतियों, प्रवृत्तियों की निंदा तो करता हूँ पर उस पर अपने सहयात्रियों की किसी खटकनेवाली बात पर ध्यान नहीं देता हूँ।

■ आपके कई व्यंग्य संग्रह आये हैं लेकिन आपने श्रीलाल शुक्ल, डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी के समान व्यंग्य उपन्यास को प्राथमिकता क्यों नहीं दी? जबकि नये व्यंग्यकार व्यंग्य उपन्यासों को लिखने की कोशिश कर रहे हैं?

यह निश्चित ही मेरी सीमा है। हो सकता है व्यापक फलक पर विषयवस्तु की मुझमें क्षमता नहीं है। पर मैंने दो व्यंग्य नाटक लिखे हैं और अभी पिछले दिनों 'सीता अपहरण केस' का हैदराबाद में सफल मंचन भी हुआ है। इसका अर्थ हुआ कि मैं व्यंग्य को एक व्यापक फलक दे सकता हूँ। दो नाटकों के अतिरिक्त मैंने 'साकेत', 'मृगनयनी', 'पिक्चर ऑफ डोरियन ग्रे', 'रोम की नगरवधू' आदि का रेडियो नाट्य रूपांतर भी किया और दूरदर्शन के लिए धारावाहिक भी लिखे। मेरे दो व्यंग्य उपन्यास अधूरे पड़े हैं। पर मैं इतर कार्यों में शायद अधिक समय नष्ट करता हूँ। उपन्यास के लिए जिस लेखकीय अनुशासन की आवश्यकता होती है, शायद वह मुझमें नहीं है। मैं कमरकस लेखन नहीं कर पाता हूँ। इतना तो मुझे एक दिन लिखना ही है जैसा अनुशासन मुझमें नहीं है। अनेक कारण हो सकते

हैं मेरी इस अक्षमता के.

■ अपनी इस व्यंग्य लेखन यात्रा के दौरान आपका अहम कभी आड़े आया?

आपका यह प्रश्न बहुत विचित्र है. कुछ आउट ऑफ कोर्स जैसा या कहें इस सवाल की मैंने तैयारी नहीं की है. मेरे विचार से तथाकथित साधु-संतों को छोड़ दें तो अहम् एक ऐसी स्वाभाविक मानवीय दुर्बलता है जो आड़े आती रहती है. बहुत छोटे-छोटे लेखकीय अहम् होते हैं. अनेक बार तो गलियों में बेबात लड़ते बच्चों के मुद्दों जैसे होते हैं. इस मायने में लेखक बच्चा ही होता है – कहीं रचना छप गयी और दोस्तों ने प्रशंसा कर दी तो मन फूला-फूला घूमता है और यदि किसी लुच्चे आलोचक ने रचना को दो कौड़ी का कह दिया तो मन गाने लगता है, 'ये दुनिया अगर मिल भी जाये तो क्या है.' आजकल तो अपने-अपने मठों और गढ़ों में सुरक्षित एवं प्रसन्न सृजनधर्मियों द्वारा 'परायों' पर बात न करने का सिलसिला भी चल रहा है. इस अहम् के चलते ही लेखक डिप्रेशन का शिकार हो जाता है.

■ आप व्यंग्य लिखने, 'व्यंग्य यात्रा' पत्रिका निकालने में काफी सक्रिय हैं. क्या आप अन्य विधाएं, जैसे कहानी, उपन्यास, कविता पढ़ने के लिए समय निकाल पाते हैं?

आपका तीर सही निशाने पर है. बहुत लोगों की सोच है कि प्रेम जनमेजय तो व्यंग्य ही ओढ़ता-बिछाता है. यह बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद? पर ऐसा नहीं है, यह बंदर अदरक का नहीं और भी स्वाद जानता है. मैंने जैसा कहा कि मैं रचना की ताकत को विधा के साथ नहीं जोड़ता हूं. इसलिए अच्छी रचना किसी भी विधा में हो, यदि वह मुझे आकर्षित करती है, पढ़ लेता हूं. वैसे आजकल खराब रचनाएं अधिक पढ़ रहा हूं. 'व्यंग्य यात्रा' तथा 'गगनांचल' के संपादक के रूप में लेखक बंधु इस दृष्टि से मुझ पर काफी कृपा कर रहे हैं. इसके अतिरिक्त मुझे वरिष्ठ मानकर भूमिका या फ्लैप लिखवाने के कर्म के दौरान पढ़ने का सुअवसर प्रदान कर दिया जाता है. इन दिनों पढ़ना बहुत अधिक और लिखना बहुत कम हो पा रहा है.

■ आप कई वर्षों से यह पत्रिका निकाल रहे हैं. इसका आर्थिक वहन, इससे जुड़े कड़वे मीठे अनुभव पाठकों के साथ बांटना चाहेंगे?

जैसा कि मैंने 'व्यंग्य यात्रा', के प्रवेशांक के संपादकीय में लिखा था कि यह पत्रिका सामूहिक सोच का परिणाम है. यह एक मिशन है जिसे अनेक हाथ एक साथ चला रहे हैं. इस संदर्भ में मुझे कभी आर्थिक संकट का अधिक समय तक अनुभव नहीं हुआ है. जब भी लगता है मैं मित्रों, परिवार, रिश्तेदारों, शुभचिंतकों से भिक्षा मांग लेता हूं और इस संदर्भ में मेरा अनुभव मीठा ही है. जब आपकी प्राथमिकता मिशन का रूप धारण कर लेती है तो साधन स्वयं ही जुड़ते जाते हैं. मुझे प्रसन्नता है कि हर वर्ग के व्यक्ति ने न केवल आर्थिक सहयोग दिया है अपितु रचनात्मक सहयोग दिया है. सार्थक एवं गंभीर व्यंग्य को व्यापक आधार देने में अपनी भूमिका निभाही है. आज का व्यंग्य एक चारदीवारी में बंद नहीं है अपितु अपना धरातल व्यापक कर रहा है. पर रास्ता अभी बहुत लंबा है. सार्थक व्यंग्य को अपने दायम दर्जे के कलंक को धोने के लिए बहुत परिश्रम करना है.

■ क्या हिंदी में साहित्यिक लेखन को आजीविका के रूप में अपनाया जा सकता है?

हिंदी व्यंग्य के दो शीर्ष रचनाकारों – परसाई और शरद जोशी ने तो अपनाया ही. आजकल फ्रीलांस लेखन के लिए बहुत सारे दरवाजे खुले हुए हैं. हां, यदि आप छुई-मुई पतिव्रता नारी की तरह लेखन को आजीविका के लिए अपनाना चाहेंगे तो बहुत मुश्किल होगी. वैसे नरेंद्र कोहली जैसे लेखक भी हैं जो मनोवांछित लिखते हैं तथा प्रकाशक को डिक्टेट करते हैं. पर ऐसे उदाहरण बहुत ही अल्प हैं. आज की बढ़ती महंगाई में साहित्यिक लेखन आपको रोज कुआ खोदो और पानी पीओ जैसा सुख तो दे सकता है पर आपके मकान में स्वीमिंग पूल भी है का सुख नहीं दे सकता. स्वतंत्र लेखक के रूप में अनेक समझौते करने होते हैं तथा कई बार बिना चादर के पैर पसारने पड़ते हैं.

■ हर लेखक के जीवन में एक ऐसा समय आता है जब लेखक अपने ही लिखे पर सवाल उठाता है कि उसने जो लिखा है वह कितना सार्थक है, उसकी कितनी सामाजिक उपादेयता है, क्या आपको कभी ऐसा लगा या आपने महसूस किया?

मेरा मानना है कि लेखक को अपना विश्लेषण निरंतर करते रहना चाहिए. आजकल सही सलाह

देनेवाले और निष्पक्ष आलोचना करनेवाले संतों की कमी है और ऐसे शुद्ध निंदक भी नहीं मिलते हैं जो आपके आंगन में बैठे आपका स्वभाव निर्मल करते रहें. हां, यदि आप किसी पद पर हैं, किसी पत्रिका के संपादक हैं, या आदि आदि अनादि हैं तो आपके लेखन को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने वालों की आंगन में भीड़ लगी रहेगी जो आपको यह सोचने का भी अवसर लेने नहीं देगी कि आप क्या थे और क्या हो गये. वैसे तो लेखक के लिए हर ताज़ा रचना नोबल पुरस्कार दिलवाने वाली होती है. हर लेखक का मन कहता है - 'या रब वो न समझे हैं न समझेंगे मेरी बात.' पर हर लेखक के अंदर एक निर्मम संपादक होना ही चाहिए. साहित्य के रास्ते में शॉर्टकट नहीं होते, यह तो लंबा रास्ता है जिसमें अक्सर आपके इस असार संसार से कूच करने के बाद ही आपका उचित मूल्यांकन होता है?

■ दिल्ली को हिंदी का गढ़ माना जाता है लेकिन वहां की जो जोड़-तोड़ की साहित्यिक राजनीति है, उसमें आपको लगता है कि वहां रहकर साहित्य से जुड़े रहना और ख़ुद को चलायमान रखना आसान है?

एक समय था जब इलाहाबाद हिंदी साहित्य की राजधानी हुआ करता था. जबसे संतों को सीकरी में इंटरैस्ट आने लगा और उन्हें वहां से पर्याप्त इंटरैस्ट मिलने लगा सारी मक्खियां इसी गुड़ के इर्द-गिर्द मंडराने लगीं. बहुत पहले मैंने 'व्यंग्य यात्रा' का एक अंक निकाला था - 'साहित्यकार की नैतिकता' पर केंद्रित. इस अंक के संपादकीय में मैंने लिखा था - आधुनिक संत कहीं कीचड़ में कमल की तरह हैं, कहीं इंद्रधनुष में सफ़ेद खद्वर हैं और कहीं लाली मेरे लाल की तरह हर दिखने वाले स्थान में लाल हैं और यह दीगर बात है कि ख़ून सफ़ेद है. अनेक कलाओं में पारंगत ये संत जानते हैं कि काजर कोठरी में रहते हुए भी श्वेत रहने का कैसे अभिनय किया जा सकता है. ये जानते हैं कि श्वेत बगुला होते हुए भी कैसे हंसध्वनि की जा सकती है. मधु जी आप तो मुंबई में रहती हैं, जानती हैं कि भाईगिरी क्या होती है. साहित्य में भी भाईगिरी चल निकली है. किसी की सुपारी लेना या किसी को मुख्यधारा प्रोटेक्शन देने का धंधा भी चल रहा है. दिल्ली में मेरे

एक मित्र हैं जो रंगमंच से जुड़े हैं और उन्होंने बताया कि हिंदी साहित्य में अकादमिक काल गर्ल्स का रैकेट चलता है. यदि आप साहित्य में शॉर्टकट चाहते हैं तो आपको हिस्सा बनना ही पड़ेगा वरना अपनी राह चलते रहिए.

■ आप तो विदेश में भी रहे हैं और आपने हिंदी साहित्य की विदेशी तस्वीर को बहुत करीब से देखा है. आपने कैंनेडा, अमेरिका, यू. के. में बसे हिंदी साहित्यकारों के साहित्य को पढ़ा होगा. उस साहित्य के बारे में कुछ कहना चाहेंगे?

विदेश में मैं एक ऐसे देश में रहा जहां हिंदी साहित्य की तो क्या कहें हिंदी भाषा का लगभग रेगिस्तान दिखाई देता है. मैं त्रिनिदाद की बात कर रहा हूं जहां मैं वेस्ट इंडीज विश्वविद्यालय में लगभग चार वर्ष अतिथि आचार्य के रूप में रहा. ऐसा नहीं है कि उन लोगों के मन में हिंदी भाषा के प्रति लगाव नहीं है. हिंदी के प्राध्यापक के रूप में मैंने स्वयं को भारत में कभी इतना गौरवांनित नहीं पाया जितना उस देश में पाया. भाषा उनके लिए अस्मिता की पहचान या फिर गंगा की तरह पवित्र वस्तु है. भाषा संवाद का माध्यम नहीं है, लगाव का कारण है. ऐसे देश में मैंने आरंभ में हिंदी साहित्य का माहौल पाना चाहा तो उसके स्थान पर रेगिस्तान देखकर मन रो दिया. साहित्यकार के लिए साहित्य का माहौल भी आवश्यक होता है. विश्वविद्यालय में मार्च माह में साहित्यिक सप्ताह होता था जिसमें रचना पाठ होता था और मैंने भी प्रति वर्ष अपने अंग्रेजी में अनूदित व्यंग्य पढ़े पर मेरी अपनी भाषा में मेरी रचना को सुनने वाला कोई नहीं था. ऐसे में प्रो. हरिशंकर आदेश का मिलना उस रेगिस्तान में सरोवर के मिलने जैसा था. तब मुझे समझ आया कि किन विपरीत परिस्थितियों और माहौल में इस रचनाकार ने अपनी रचनाशीलता को ज़िंदा रखा है. मेरी तो एक-दो वर्ष में ही टैं बोल गयी और यह साहित्यकार तो बरसों से विपरीत माहौल को जी रहा है. हर देश की अपनी परिस्थितियां और अपने विरोध हैं. दूर के ढोल सुहाने होते हैं और हमें लगता है कि ये ऐश कर रहे हैं. पर सही लेखक भौतिक समृद्धि से संतुष्ट नहीं हो पाता है. वह अपनी रचनात्मकता का संवाद चाहता है. जिन

लोगों से संवेदनशील रूप से जुड़ा है उनके करीब होना चाहता है. भौतिक सुख उसे विदेश की ओर खींचते हैं और संवेदनशील मन देश की ओर. आपने देखा ही होगा कि जैसे पहला अवसर मिलते ही हम विदेश यात्रा को उत्सुक होते हैं वैसे ही प्रवासी अवसर मिलते ही देश यात्रा को उत्सुक होता है.

■ इसी से जुड़ता सवाल है कि कुछ लेखक जो भारत में ही प्रतिष्ठा हासिल कर चुके थे, उस समय वे भारतीय लेखक कहलाते थे. विदेशों में जाकर बसते ही वे प्रवासी कहे जाने लगे. ऐसा क्यों?

हिंदी साहित्य में आलोचकों ने अपनी सुविधा और अपनी विशिष्ट 'खोज' स्थापित करने के लिए अनेक खाने बना दिये हैं. किसी खाने में नारी विमर्श फिट है, किसी में दलित साहित्य और किसी में प्रवासी साहित्य. आपने सही कहा है कि भारत में रहनेवाला लेखक विदेश में जाते ही प्रवासी रचनाकार कैसे हो जाता है? मधु जी, विसंगति तो यह है कि जो रचनाएं उसने भारत में रची होती हैं उन पर भी प्रवासी साहित्य का बिल्ला लग जाता है. रचनाकार के द्वारा रचित साहित्य तो वही है, विदेश जाते ही क्या उसका धर्म परिवर्तन हो जाता है? जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि मेरे लिए बेहतर रचना बेहतर है. अब वह प्रवासी ने लिखी हो या फिर अप्रवासी ने. साहित्य दूर की वस्तु है. बरसों बाद हम कबीर की रचनात्मकता की ही प्रशंसा करते हैं. कुछ लोग हर जगह आरक्षण की चाह में दिखाई देते हैं, ऐसे में कुछ रचनाकार हैं जो अच्छा साहित्य तो न लिख सके पर अच्छा साहित्यकार कहलवाये जाने के लिए आरक्षण की मांग करते हैं. इस विषय पर मैंने एक व्यंग्य लिखा था, 'प्रवासी से प्रेम' जिसमें एक स्थान पर लिखा -

“एक समय था जब विदेशी विद्वानों के मुंह से हिंदी सुनकर हम भक्ति भाव से भर जाते थे. विदेशी विद्वान क्या बोल रहे हैं और क्यों बोल रहे हैं, इस ओर हिंदी के भक्तों का ध्यान नहीं जाता था. बस उनके मुखारबिंद से हिंदी सुनकर ही मन गुदगुदाये जाता था. जैसे मां अपने बच्चे का तुतलाना सुनकर ही मरी जाती है वैसे ही गोरी हिंदी के उस युग में हिंदी की अनेक मांयें न्योछावर हो गयीं. उन माओं का बलिदान भी व्यर्थ नहीं गया. सात समुंदर पार तक हिंदी की सेवा का सुनहरा

अवसर मिला. गोरी हिंदी को देखकर लगता था कि हमारी भाषा कितनी समृद्ध है. यह दीगर बात है कि इस प्रक्रिया में गोरी हिंदी के भक्त तो समृद्ध हो गये पर भाषा विपन्न ही रही. इस विपन्न भाषा का उत्थान करनेवाले कहां के कहां पहुंच गये और भाषा वहीं की वहीं कदमताल करती रह गयी. आज समय बदल रहा है. अनेक मामलों में हम आत्मनिर्भर हो गये हैं. जबसे हमारे प्रवासी भारतीय भाई समृद्ध हुए हैं तथा इस कारण उनका साहित्य भी समृद्ध हुआ है तबसे हमने विदेशी विद्वानों की ओर ताकना काफी कम कर दिया है. प्रवासी साहित्यकारों के आने से हिंदी भाषा और साहित्य में वसंत छा गया है. विदेश भ्रमण की कोयल कूकने लगी है तथा अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों तथा सम्मेलनों के भंवरे गुनगुनाने लगे हैं. हिंदी की गूंज पूरे विश्व में सुनाई देने लगी है. यह दीगर बात है कि उस गूंज की प्रतिध्वनि भारत में अंग्रेजी के रूप में सुनाई देती है. अपने सामने प्रवासी साहित्यकार को पाकर मैंने वंदना आरंभ की... हे चतुर्भुजी प्रवासी साहित्यकार, तुझे बार-बार प्रणाम है. एक बार प्रणाम करने से किसी के सर में कितनी भी जूं हो वह कान के पास तक नहीं रेंगती है. हे चतुरंगी तेरे एक हाथ में सेवार्थ डॉलर व पाउंड है, दूसरे हाथ में विदेश बुलाने का लुभावना मृगतृष्णामय निमंत्रण है, तीसरे में प्रकाशकों के लिए पांडुलिपियां तथा चौथा हाथ यह बताने के लिए खाली है, कि हे मूर्ख तू मुझसे क्या ले जायेगा. तेरे इस चतुर्भुज रूप का ध्यान कर ही तेरे भक्त तेरी पूजा अर्चना के लिए नित नये-नये स्वांग रचते हैं. तेरी एक मनमोहक मुस्कान पाने को हिंदी साहित्य के देवता तरसते हैं और जब तू वो मुस्कान बिखेर देता है तो तेरे लेखन पर फूलों की वर्षा करते हैं. तू कुछ भी लिख दे प्रकाशक के लिए वह अमूल्य है क्योंकि उसका मूल्य उसे डॉलरों और पाउंड में मिलता है. तू इतना त्यागमय है कि प्रकाशकों से रॉयल्टी तक नहीं लेता है अपितु हिंदी साहित्य की दशा सुधारने के लिए तू प्रकाशकों को रॉयल्टी तक देने की क्षमता रखता है.”

■ आप समकालीन साहित्य जगत में किस तरह के परिवर्तन लाना चाहेंगे?

परिवर्तन सृष्टि का नियम है. आप न भी चाहें तो परिवर्तन अपना क्रम चालू रखते हैं. छोटे-छोटे

परिवर्तन एक बड़े परिवर्तन को जन्म देते हैं. समकालीन साहित्य जगत में तथाकथित प्रतिबद्धताएं, मुक्तिबोध की भाषा में कहूं तो अपने-अपने गढ़ और मठ कुछ अधिक ही फलने फूलने लगे हैं. साहित्य को देखने का दृष्टिकोण सीमित होता जा रहा है. साहित्यिक सहिष्णुता उतार पर है. वसुदेव कुटुंब के लिए चिंतित रचनाकार अपने कुटुंबों के लिए ही चिंतित दिखाई देते हैं. अब मेरी आयु साहित्य जगत में किसी तरह का परिवर्तन लाने की नहीं रही है पर आरंभ से मेरा प्रयत्न इस प्रकार के परिवर्तन की दिशा में कार्यरत रहा है. विशेषकर पत्रिका का संपादन करते समय मेरी सोच रही है कि इसका एक मंच की तरह से प्रयोग किया जाये जिसमें साहित्य जगत की बेहतर रचनाएं आ सकें न कि उसका प्रयोग अपने गढ़ का निर्माण करने के लिए किया जाये.

■ आप व्यंग्य विधा की भावी पीढ़ी से क्या अपेक्षाएं रखते हैं ?

आपके इस सवाल के उत्तर में मुझे हरिशंकर परसाई के साथ हुई अपनी बातचीत की याद आ रही है. उन दिनों मैं 'सार्थक' नामक पत्रिका का संपादन कर रहा था. परसाई अपनी टूटी टांग का इलाज कराने सफदरगंज अस्पताल में भरती हुए थे. यह घटना संभवतः सन १९७६ की है. एक दिन मैं और मेरे मित्र हरिमोहन शर्मा उनसे मिलने और 'सार्थक' के लिए उनसे बातचीत करने गये थे. मैं उन दिनों व्यंग्य का व्याकरण सीख रहा था और परसाई से अत्याधिक प्रभावित था. आज भी मैं उतना ही प्रभावित हूं. परसाई के प्रति अपनी श्रद्धा के अतिरेक में मैंने कहा था, 'आपने इतना लिख दिया है कि हमारी पीढ़ी के लिए विषय ही समाप्त हो गये हैं.

यह परसाई की महानता थी कि उन्होंने अपनी प्रशंसा को किनारे रखते हुए अपनी सीमा का उल्लेख करते हुए कहा - 'नहीं प्रेम हमारी पीढ़ी ने अपने पिता को नंगा नहीं देखा है. तुम्हारी पीढ़ी देख सकती है.' मैं परसाई के इस उत्तर का सहारा लेकर कहना चाहूंगा कि किसी भी क्षेत्र में नयी पीढ़ी को निरंतर और बेहतर करने का प्रयत्न करना चाहिए. विकास की कोई सीमा नहीं होती है. मैं अपेक्षा रखता हूं और मुझे विश्वास भी है कि व्यंग्यकारों की नयी पीढ़ी सार्थक, गंभीर एवं मानव की बेहतरी के लिखे जा रहे साहित्य के रूप में

गज़लें

✍ नूर मुहम्मद 'नूर'

गो कि थोड़ा-सा सा खुशलिबास भी हूं ।
पर मैं अंदर कहीं उदास भी हूं ॥
दूर हूं तुमसे, ठीक है लेकिन ।
ज़िंदगी तेरे आस पास भी हूं ॥
चिथड़ा-चिथड़ा सा ख्वाब के जैसा ।
और उड़ता हुआ कपास भी हूं ॥
लिखना-पढ़ना अभी तलक जारी ।
आप कह लें कि बदमआश भी हूं ॥
नाउमीदी के इस अंधेरे में ।
'नूर' लफ़्ज़ों में एक आस भी हूं ॥

X X

दरख़्तों में कहीं साया नहीं है ।
कहीं भी अब ये सरमाया नहीं है ॥
वो तेरा हो या मेरा हो या उसका ।
किसी चेहरे पे अब चेहरा नहीं है ॥
अनर्थों से घिरे रहते हैं हरदम ।
कोई भी लफ़्ज़ अब तन्हा नहीं है ॥
मेरे सपनों को आंखें मिल गयी हैं ।
मेरी आंखों में अब सपना नहीं है ॥
मुझे इतना पकाया है समय ने ।
मेरा इक शेर भी कच्चा नहीं है ॥
गज़ल जिस पर गज़ल भी सर धुनेगी ।
अभी वो 'नूर' ने लिक्खा नहीं है ॥

✍ सी. सी. एम. क्लेम्स ला,
दक्षिण पूर्व रेलवे, ३ कोयला घाट स्ट्रीट,
कोलकाता-७००००१,

इस व्यंग्य विधा को और सशक्त करेगी. एक चिकित्सक के रूप में व्यंग्य के हथियारों का प्रयोग करेगी.

✍ ७३, साक्षरा अपार्टमेंट्स,
ए-३, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली-११००६३
मो. ९८१११५४४४०

मधु प्रकाश
ए-१/१०१, रिद्धी गार्डन, फ़िल्म सिटी रोड,
मालाड (पू.), मुंबई-४०००९७.



बाइस्कोप

सबका चहेता फ़िल्म निर्माता, निर्देशक, लेखक : बी.आर.इशारा



(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकार व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं. अगले अंकों में पढ़िए इम्तेयाज़ हुसैन, सुदर्शन फाकिर आदि के बारे में.)

✍ सविता बजाज

परिवर्तन जीवन का अटूट नियम है और इस नियम के चक्र में समय का पहिया हमेशा घूमता रहता है. ठीक इसी तरह बॉलीवुड में भी हर कोई प्रकृति के नियम में बंधकर कुछ नयी ईजाद कर नाम कमाता है. फिर धन बरसता है और रातों रात वह हर तरह से मालामाल हो जाता है.

लगभग तीन दशक पहले कुछ ऐसा ही करिश्मा बाबू दा के साथ हुआ. फ़िल्म चेतना से बाबू दा का नाम फ़िल्म इंडस्ट्री में ऐसा चमका कि बड़े-बड़े फ़िल्म बनानेवालों ने दांतों तले उंगली दबा ली. फ़िल्म की नायिका रेहाना सुल्तान थी और फ़िल्म बहुत ही बोल्लड थी. फ़िल्म समाज का एक जीता जागता आईना थी जिसे देखकर दिल में बहुत भीतर सुई सा कुछ चुभ जाता. 'चेतना' भारतीय इतिहास की पहली कलर फ़िल्म थी जो मात्र एक महीने के अंदर रियल लोकेशन पर बनी थी और वह भी बहुत कम पैसों में. लोकेशन पूना का एक छोटा सा बंगला था जिसे स्व. नायिका नादिरा जी ने बाबू दा को शूटिंग के लिए मुफ्त में दे दिया था.

देखते ही देखते बाबू दा बॉलीवुड की एक नामी हस्ती बन गये और फ़िल्मों का सिलसिला चल निकला. 'इन्साफ का मंदिर', 'जरूरत', 'मिलाप', 'गुनाह और कानून' वगैरह अनगिनत फ़िल्में बाबू दा ने बनायीं और उनका निर्देशन किया.

बाबू दा की फ़िल्म 'औरत' में मुझे भी काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था. मैं फ़िल्म में वैंप यानि मैडम विद्या बनी थी और साथी कलाकार थे जीनत अमान, शशी कपूर, अमरापुरकर. बाबू दा ने मुझे अभिनय करने की पूरी छूट दी. मेरे सामने कपड़ों के ढेर लगा

दिये और गहनों से भरी एक पेटी मेरे सामने रख बोले सविता, इनमें से जो भी करैक्टर में सूट करता हो ले लो. आप तो एन.एस.डी की हो, आपको क्या समझाना. मेरा



माथा बाबू दा के सामने झुक गया तो उन्होंने मेरे सर पर हाथ रख आशीर्वाद दे दिया.

वक्त का पहिया घूमा, उम्र बढ़ने के साथ-साथ आपने फ़िल्में करनी कम कर दीं और लेखन की तरफ ज़्यादा झुके. 'स्वाभिमान' सीरियल के करीब एक सौ पचास एपीसोड लिखे और बालाजी के सीरियल 'इतिहास' के पांच सौ एपिसोड. कुछ का तो निर्देशन भी किया जैसे, 'जिंदगी तेरी मेरी कहानी', 'औरत' वगैरह आपने ही लिखे. हाल ही में बाबू दा को जब दादा साहब फालके अवार्ड से सम्मानित किया गया तो मेरी आपसे एक छोटी सी मुलाकात भी हुई -

बाबू दा, आपका असली नाम कोई नहीं जानता, बस बी.आर.इशारा की ही पहचान है. सच क्या है?

बाबू दा - लंबी कहानी है, लेकिन मैं संक्षेप में बताऊंगा. मैं जब करीब सोलह साल का था तो अपने घर हिमाचल से बंबई भाग आया ताकि मुझे कोई ढूढ़ न सके. फ़िल्मों में कोई दिलचस्पी न थी. दादर के रणजीत स्टूडियो में बर्फ, पानी लेकर जाता था. सन पचास के आस-पास की बात है. तब फ़िल्म 'जोगन' बन रही थी जिसकी नायिका नरगिस थी. मेरी उर्दू साफ़ थी. एक दिन नरगिस जी ने पूछा - कहां तक पढ़े

हो? मैं बोला - आठवीं पास हूं. बोलीं - तुम्हारी उर्दू बहुत साफ़ है तुम कुछ दूसरा काम करो. उन दिनों आर.के.स्टूडियो भी बन रहा था. नरगिसजी की वजह से कमर जलालाबादी के यहां आफिस बॉय बन गया. उस ज़माने में ऑफिस बॉय ही स्पॉट बॉय थे. तनख्वाह तीस रुपये महीना. वहीं कमर साहब के गुरु रोशन नाथ मुझे बाबू राम बुलाते और तनख्वाह भी साठ रुपये हो गयी थी. बस वहीं कैफ़ इरफ़ानी ने मेरे नाम के साथ ईशारा लगा दिया और मैं रोशन लाल से बी. आर. ईशारा बन गया.

आपने ज़्यादा फ़िल्में नये लोगों के साथ कीं न कि स्टार लोगों के साथ, कोई खास वज़ह?

स्टार लोगों की डेट मिलनी बहुत कठिन होती है. फ़िल्म 'लोग क्या कहेंगे' बनने में सात साल लग गये. धीरे-धीरे मैंने अपनी कंपनी ही बंद कर दी और लेखन को ज़्यादा समय देने लगा.

आजकल के बॉलीवुड के बारे में क्या कहेंगे?

सब तमाशा है. तकनीकी और डेकोरेशन बहुत ज़्यादा है. मीडिया, मार्केटिंग और पैसा तीनों ने सबका बेड़ा गरक करके रख दिया है. मन मुताबिक कुछ हो ही नहीं सकता क्योंकि कोई सुननेवाला नहीं!

✍️ पो.बॉक्स-१९७४३, जयराज नगर,
बोरिवली (प.), मुंबई-४०००९१
फोन : ९२२३२०६३५६

कविता

प्रिय, आ भी जाओ!

✍️ डॉ. भावना शेखर

पूर्णिमा के चंद्रमा सा लाये हो उजास तुम
मन की सूनी सरणी में मेले का आभास तुम
सुप्त चाह भीग उठी प्रणय की बौछार से
कामनाएं जाग उठी सैंकड़ों उल्लास से
सोंधी सी सुगंध भरी जीवन के उपवन में
मदिरा सी मादकता छापी है तन-मन में
चातकी सी तड़पू, हाय, मयूरी सी तरसू
घन बन कब आओगे, प्रिय मेरे आंगन में.
प्रीत ही पाथेय मेरा, प्रीत ही डगर है
प्रीत ही श्रृंगार मेरा, प्रीत प्रियवर है
प्रीत ही परिधान मेरा, प्रीत ही बिछौना
प्रीत मेरी क्रीड़ा और प्रीत ही खिलौना.
प्रियतम, अब बरसो, हृदय के इस कानन में
तेरी ललक की झलक मेरे आनन में
नयनों को मूंदे मैं कब से खड़ी हूं
प्रिय आ भी जाओ, मैं आकुल बड़ी हूं।

✍️ सी-१४३, जगत अमरावती
अपार्टमेंट, बेली रोड, पटना-८००००१

गाज़लें

✍️ सलीम अख्तर

बीज लम्हों के बो रहा है वक्त ।
देख सर-सब्ज़ हो रहा है वक्त ॥
दिल हवस की उड़ान पर है अभी ।
होश क्यों अपने खो रहा है वक्त ॥
मौसमों आना तुम दबे पांवों ।
बोलो आहिस्ता सो रहा है वक्त ॥
धूप का तौलिया जरा लाना ।
बंद कमरे में रो रहा है वक्त ॥
वक्त मरहम भी और नशतर भी ।
जख्म ख़ुद अपने धो रहा है वक्त ॥

दाल और चावल की हांडी पानी-पानी हो गयी ।
बारिशों की कच्ची छत पे मेहरबानी हो गयी ॥
बेसबब आते नहीं हैं बाग़ में भंवरे कभी ।
फिर किसी मुफलिस की बेटी लो सयानी हो गयी ॥
इस क़दर संजीदा अब से पहले तो बच्चे न थे ।
क्या ज़माना आया है बूढ़ी जवानी हो गयी ॥
जंगलों में मिल ही जाये अमन के शायद निशां ।
दिल्ली तो आतंक की अब राजधानी हो गयी ॥
फिर वही नारे, वही रैली वही लफ़्फ़ाज़ियां ।
राजनीति वोट की गंदी कहानी हो गयी ॥

✍️ अंसारी वार्ड, गोंदिया (महाराष्ट्र).

कथाबिंब/ जुलाई-सितंबर २०१० ॥४४॥



पुस्तक-समीक्षा

बाल साहित्य की समृद्ध कृति

✍ अरविंद शर्मा 'राही'

महक फूल-सा मुस्काता चल (बाल कविता संग्रह) :
रमेश यादव

प्रकाशक : सुरेंद्र कुमार एंड सन्स, शाहदरा,
दिल्ली-११००३२. मूल्य : १५० रु.

बच्चों के सरल स्वभाव, निष्कलुष मन और सीमित अनुभव से परे जाकर असीमित कल्पना की उड़ान बाल साहित्य की मांग होती है. बाल साहित्य की रचना के लिए साहित्यकार को बाल-मन के धरातल पर उतरकर उनके अनुभव-संसार और कल्पनाशीलता को समझने और उसे सकारात्मक विस्तार देना आवश्यक होता है. इस दृष्टि से भाई रमेश यादव के बाल-कविताओं का संग्रह 'महक फूल सा, मुस्काता चल' अत्यंत समृद्धशाली है.

'महक फूल सा, मुस्काता चल' की सभी रचनाएं सरल-सपाट भाषा के साथ ही गेयता से परिपूर्ण हैं और आसानी से जुबान पर चढ़ने में सक्षम हैं. भाषा की जटिलता और कीमियागीरी से बचते हुए कवि ने रचनाओं का मौलिक प्रवाह बनाये रखा है. रचनाओं में जहां एक ओर बाल-मन की मासूमियत झलकती है वहीं दूसरी ओर कवि दिशाबोध का एहसास कराने में भी सफल हुआ है. इनकी रचना 'बच्चों, तुम सबसे अच्छे हो' की एक बानगी देखें :

हार-जीत का गम नहीं करते
लड़ते पर दुश्मन नहीं रहते,
प्यार की धारा में बहते हो
बच्चों, तुम सबसे अच्छे हो।

x x x

तुम पर तो यह देश खड़ा
आगे है पथ कठिन बड़ा,
तुम सपूत सबसे अच्छे हो
बच्चों, तुम सबसे अच्छे हो।

तकनीकी के इस दौर का भी रमेश जी ने पूरा-पूरा ख्याल रखा है. कंप्यूटर, मोबाइल, टेलीफोन जैसी तमाम चीजें आज के बच्चों का नया खिलौना बन गयी हैं. जब हम बाल साहित्य का सृजन करते हैं तो इसमें उनके सभी सरोकारों का हमें ध्यान रखना होता है, इसे कवि ने यहां बखूबी निभाया है. 'कंप्यूटर नवाब' और 'एनीमेशन' रचनाएं इसका सुंदर उदाहरण हैं, पंक्तियां देखें :-

नवयुग का ये नया सबेरा

ज्ञान का ये है नया चितेरा,

खेल खेलते मुन्ना मुनियां

इसमें बसती सारी दुनिया

x x x

ऐ मेरी भाई सुनो जनाब

जीवन का बस एक ही खाब,

पढ़-लिखकर हम बने महान

जय कंप्यूटर, जय विज्ञान।।

इस पुस्तक 'महक फूल सा, मुस्काता चल' में जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह है कवि का प्रकृति प्रेम, कवि का संस्कृति व राष्ट्रीयता के प्रति सजग आग्रह. प्रकृति और उसके प्रति बच्चों की संवेदनशीलता को निहायत खूबसूरती से कवि ने उकेरा है. प्रकृति के सुंदर चित्रण और उसकी तमाम विशेषताओं की मनोहारी प्रस्तुति की बात करें तो 'नन्हीं तितली', 'बगिया के गीत', 'वर्षा रानी', 'सुहानी सर्दी', 'तपती गर्मी का मौसम आया' जैसी तमाम रचनाएं बाल साहित्य की धरोहर होने का दम-खम रखती नज़र आती हैं.

जहां पुस्तक का आवरण पृष्ठ अत्यंत आकर्षक है वहीं शंकर नायक का चित्रांकन पुस्तक की महक को और बढ़ाने वाला है. साहित्य जगत में इस किताब का बड़ी गर्मजोशी से स्वागत किया जाना चाहिए.

पुस्तक की साज-सज्जा, विषय-वस्तु, भाषा का लालित्य एवं उसका प्रस्तुतीकरण अत्यंत प्रभावशाली है, फिर भी एक बात से निराशा पैदा होती है वह है किताब का दाम. बालसाहित्य, संस्कृति और बचपन दोनों आज के दौर में कठिन समय से गुजर रहा है. ऐसे में यह पुस्तक अधिक लोगों तक पहुंचना चाहिए.

यह बाल कविता संग्रह अपने सामाजिक सरोकारों को लेकर पूरी तरह से सजग है. आज समाज में जीवन मूल्यों का अवमूल्यन जारी है. ऐसे में बालसाहित्य के जरिये संस्कार और धरोहर को शृंखलाबद्ध परोसना समझदारी भरा कदम हो सकता है, पर बदकिस्मती कहें य कुछ और आज क्षेत्रीय भाषाओं में बालसाहित्य उपेक्षा का शिकार है. भविष्य में यह एक बड़ी भूल साबित हो सकती है.

१८०२, ए विंग, गिरिराज होरॉयजन,
सेक्टर-२०, खारघर, मुंबई ४१०२१०

अंधकार में दीप जलाती कथा

सुमीता केशवा

‘टेम्स की सरगम’ (उपन्यास) : संतोष श्रीवास्तव
प्रकाशक : मानव प्रकाशन, १३१, चित्तरंजन एवेन्यू,
कोलकाता-७०००७३ मू. २५०/- रु.

वरिष्ठ कथा लेखिका संतोष श्रीवास्तव का सद्यः प्रकाशित उपन्यास ‘टेम्स की सरगम’ प्रेम तत्व की स्थापना तक अपनी कृति को पहुंचाने की सार्थक पहल है. इसके पहले उनका उपन्यास ‘मालवगढ़ की मालविका’ पाठकों के हृदय में अक्स बनकर रह गया था.

कथा आरंभ होती है भारत में अंग्रेजों के शासन के अंतिम चार दशकों के समय से जब ईस्ट इंडिया कंपनी के पदाधिकारी टॉम ब्लेयर का जहाज भारतीय तट को छूता है. साथ में उसकी अत्यंत खूबसूरत, कमसिन, विदुषी और भावुक हृदय वाली पत्नी डायना भी है. कलकत्ते के अपने शानदार आवास में रहते हुए टॉम एय्याशी का जीवन यह मानते हुए जीता है कि कालों पर तो केवल शासन किया जा सकता है. जबकि डायना जो लंदन में अपने समृद्ध व्यापारी पिता की एकमात्र संतान है भारतीय कला और साहित्य से विशेष लगाव रखती है. वह संगीत और वाद्य कला में खुद भी पारंगत होना चाहती है. भारतीय साहित्य को अच्छी तरह समझने के लिए वह संस्कृत, हिंदी और बांग्ला भाषाएं सीखती है और साथ ही संगीत भी. टॉम से निरंतर अवहेलना, दुर्व्यवहार पा उसका कोमल मन

चीत्कार कर उठता है और वह अपने संगीत गुरु चंडीदास से प्यार कर बैठती है. चंडीदास आकर्षक, युवा बंगाली है जो स्वयं भी डायना की तरफ आकर्षित है. परस्पर अनुभूतियों और खिंचाव में बढ़ दोनों ही एक दूसरे को ऐसा प्रेम करते हैं जो ईश्वरीय स्वरूप ले लेता है. लेखिका ने इस प्रेम को इतिहास में ऐसा गूंथा है कि उस समय का यथार्थ, रहन-सहन. सामाजिक उथल-पुथल आजादी के प्रति दीवानगी आदि बातें एक सूत्र की तरह जुड़ती जाती हैं. इतिहास को अर्थ तभी मिलेगा जब मनुष्य प्रेम के तत्व को पहचान कर उसे प्राप्त कर लेगा पूरे उपन्यास में कलकत्ते का जीवंत वर्णन है. उस जमाने में बतौर शान इस्तेमाल की जाने वाली फ़िटन, अंग्रेज हुक्मरानों की विशाल कोठियां और बगीचे के खूबसूरत पुकुर. ऐसे जीवंत माहौल में संगीत का रियाज होता है और डायना सीखती है भारतीय संगीत.

पूरे उपन्यास में इस तरह के वाकिये हैं जो भले ही कथा के मूल विषय से परे हैं पर कथा सूत्र को आगे बढ़ाने में और कथा समय के यथार्थ को चित्रित करने में एक अलग ढंग से ट्रीटमेंट बनकर उभरे हैं. उपन्यास में तीन अलग-अलग ढंग के बिल्कुल अनछुये से प्रेम प्रसंग हैं. एक ओर डायना जो भले ही लंदन में पैदा हुई पर भारत आकर और चंडीदास से प्रेम करके बिल्कुल भारतीय हो गयी. उसके भारतीय होने पर किसी का उस पर दवाब न था. यह प्रेम का ऐसा समर्पित स्वरूप था जो केवल राधा कृष्ण के प्रेम में ही दिखलाई देता है. वह राधा बनकर अपने चंडीदास में समा गयी जिसके व्यक्तित्व में उसे हमेशा कृष्ण दिखते थे. वह कृष्ण को बंगाल के कण-कण से आत्मसात करने लगी और चंडीदास को हृदय में उतारती चली गयी, मानो कृष्ण कह रहे हों - मैं हूं तुम दोनों में समाया...तमाम अधीर लिप्साओं के वशीभूत तुममें उछाहें भरता.. राधा ने बांसुरी में सुर भरे और स्वयं गूंज बनकर सृष्टि के कण-कण में समा गयी. चंडीदास और डायना का प्रेम कोई साधारण प्रेम न था, दिव्य प्रेम था जिसमें आसपास की घटनाएं, अंग्रेजों के भारतीयों पर होने वाले अत्याचार, सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद फौज, उनका पलायन, बंगाल का अकाल था और साथ-साथ चल

रही थी टॉम की एय्याशी की कथा. एक गढ़ा हुआ तिलिस्म जिसमें उसकी तमाम ज़्यादातियों, फ्लर्ट के साथ-साथ डायना के प्रति थोपी हुई ज़िदंगी के कुछ हिस्से मन को कुरेद जाते हैं. ऐसे में डायना का चंडीदास के प्रति समर्पण संतुष्टि देता है जैसे कि एक दुराचारी के संग साथ का यही अंत होना चाहिए.

दूसरी ओर गुनगुन और सुकांत हैं जो देश को आज़ादी दिलाने के लिए आज़ाद हिंद फौज के सिपाही हैं. दोनों ने सिर पर कफ़न बांधकर प्रेम की शपथ ली है और जब दोनों एक साथ अंग्रेज सिपाही की गोली का शिकार होते हैं तो सुकांत के शरीर से निकला रक्त बह-बह कर पास ही निर्जीव पड़ी गुनगुन का माथा भिगो देता है... 'लो मेरी प्रिया, आज मैंने अपने रक्त से तुम्हारी मांग भर दी. आज मैंने तुम्हें वरण किया.' तीसरी ओर मुनमुन और सत्यजीत हैं जो बिना किसी वैवाहिक बंधन के युवावस्था से बुढ़ापे तक साथ-साथ रहे और ऐसा डूब कर प्रेम किया जिसकी मिसाल मिलना मुश्किल है. मुनमुन की मृत्यु सत्यजीत को तोड़ती नहीं है बल्कि वह अपनी यादों में उसे तब तक जीवित रखने का प्रण करता है जब तक वह अंतिम सांस न ले ले.

इन तीनों प्रेम प्रसंगों में जो विविधता है वह उपन्यास की कथा को गहराई तक पहुंचाती है. लेखिका ने इन प्रसंगों की जटिलता में, बुनाव में जो बारीकी रची है प्रकृति का मानवीकरण कथ्य की विशेषता है जिसके जरिये माहौल, भावनाएं उभर कर आती हैं. जैसे.. 'शाम ने परछाइयां समेट ली थीं और जादूगरनी सी परछाइयों की पिटारी लिये दबे पांव चली गयी थी...' 'अभी-अभी सूरज ने डुबकी लगायी है और अभी-अभी उसकी डुबकी से चकित चांद नभ से झांका है.'

डायना एक विदुषी, जागरूक और ईमानदार पात्र के रूप में उभरी है. उसका शांतिनिकेतन जाना, रवींद्रनाथ ठाकुर के भाषण, व्यक्तित्व से प्रभावित होना. जयदेव के गांव केंदुली जाना और गीत गोविंद की संरचना को कल्पनातीत महसूस करना कुछ ऐसे वाकिये हैं जो लेखिका की रचना प्रक्रिया के दौरान उसके गहन अध्ययन को रेखांकित करते हैं. जगह-जगह बांग्ला गीतों का गायन चंडीदास और डायना से कराना कथा की

प्रमाणिकता सिद्ध करते हैं. ये गीत देश-काल और माहौल को उजागर करने में बड़े सहायक हुए हैं. डायना की मृत्यु के बाद उसके और चंडीदास के प्रेम की निशानी उनकी बेटी रागिनी कथानक को डिस्टर्ब किये बिना ऐसी जुड़ती है कि कब उपन्यास रागिनी पर केंद्रित हो गया, पता ही नहीं चलता. हालांकि जिस परिवेश में रागिनी पली बढ़ी और जिस अपसंस्कृति का शिकार हुई उसके बाद उसका भारत आगमन, कृष्ण पर शोध और अंत में सारी समृद्धि दान कर वृंदावन में कृष्णमयी हो जाना सम्राट अशोक और राजकुमार सिद्धार्थ के इस देश में कोई अछूती घटना नहीं है. रागिनी मानसिक तनाव से जूझ रही थी. माता-पिता के प्रेम को तरसती, प्रेम में मिले धोखे को लेकर उसकी भटकन और कुंठा उसे वृंदावन तक खींच लायी थी. सांस्कृतिक और सामाजिक, बल्कि देशीय बदलाव भी रागिनी ने महसूस किया और भोगा भी. अपने जीवन के संक्रमण सहित अगर वह अध्यात्म की ओर अग्रसर हुई तो यह उसकी मानसिकता की पूर्णता ही है भटकाव नहीं.... 'मैं हूं ही नहीं.... तो वेदना कैसी? मैं कृष्ण में समा गयी हूं. अब कुछ नहीं दिखता सिवा कृष्ण के... अब तो बेलि फैल गयी कहा करें कोई....'

बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में भारत की सामाजिक स्थिति और बदलावों का विस्तृत वर्णन इस उपन्यास में है. सिनेमा, नाटक, गायन, वादन कलकत्ता, बंबई का अभिजात्य वर्ग और कला का दीवाना युवा वर्ग जो कला के साथ-साथ मौजूदा परिस्थितियों को भी नज़र की सीमा में रखता है. बंगाल के आकाल की विद्रूपता, विडंबना को दूर करने में नाटक के द्वारा धनसंग्रह, चंदा आदि कार्यों को करने से नहीं चूकता. लेखिका की पैनी दृष्टि ने उस काल का बखूबी चित्रण अपनी लेखनी में उंडेला है.

बेहद असरदार, खूबसूरत भाषा से युक्त यह उपन्यास उन दशकों को भारतीय मंच पर बड़ी सुघड़ता से फ़ोकस करता है. घटनाएं एक बहाव में घटती चली जाती हैं और उन समीकरणों को तलाशती, उजागर करती एक विस्तृत कैनवास में ढलती चली जाती हैं.

'यह पटाक्षेप है या अंतिम दृश्य की शुरुआत',

इस वाक्य में जैसे संपूर्ण उपन्यास का कलेवर सिमट आया है. कहना न होगा कि यह उपन्यास पाठकों के बीच निश्चय ही अपनी जगह बनायेगा.

२२०४, क्रिमसन टॉवर,
आकुर्ली रोड, लोखंडवाला,
कांदिवली (पू.), मुंबई-४०० १०१

मानवीय मूल्यों की अकुलाहट

अनिरुद्ध सिन्हा

जर्द पत्ते हरे हो गये (ग़ज़ल संग्रह) : चांद शेरी
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर. मू. ५०/- रु.

हाल ही में चांद शेरी का ग़ज़ल संग्रह 'जर्द पत्ते हरे हो गये' प्रकाशित होकर पाठकों के समक्ष आया है. संग्रह में कुल सत्तर ग़ज़लें हैं. प्रत्येक ग़ज़ल में मानवीय मूल्यों की स्थापना की अकुलाहट है जो सीधा-सीधा पाठक से संवाद करती है. संग्रह की पहली ग़ज़ल से ही इस बात का प्रमाण मिलता है :-

तू न अमृत का पियाला दे हमें ।
सिर्फ़ रोटी का निवाला दे हमें ॥
जिसको पढ़कर एक हों अहलेवतन ।
वो मुहब्बत का रिसाला दे हमें ॥

हमारा देश आज एक साथ कई समस्याओं से जूझ रहा है. हमारे सामने जो व्यवस्था है उस पर भूख, आतंकवाद, धर्म-जाति, शोषण, उत्पीड़न के रंग चढ़े हैं. सारे रंग प्राकृतिक यथार्थ और हमारी चेतना के बीच खड़े हैं. ग़ज़ल की यह विशेषता होती है कि वह अपने शेरों में हर रंग को अलग-अलग ढंग से पकड़ती है. एक ओर रोटी जहां वस्तुगत यथार्थ का पर्याय है वहीं दूसरी ओर मुहब्बत सांस्कृतिक यथार्थ का पर्याय है.

दोनों जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं. चांद शेरी समाज की बहुलता में विश्वास करते हैं. रोटी के लिए हिंसा की बात नहीं करते. रोटी की बंधी-बंधायी परिकल्पना से बाहर निकलकर शांति की खोज करते हैं. हम इसे विचारधारा का अंत नहीं विचारधारा का

आरंभ मान सकते हैं.

आज ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो पाठकों की उंगली पकड़कर परिणाम के बिंदु तक पहुंच सके. इसके लिए महत्वपूर्ण है जिन विचारों और भावों की आवृत्ति जितनी अधिक होती है, वे उतने ही प्रबल और सक्षम बनकर संकल्प में रूपांतरित हो जाते हैं. चांद शेरी हमें उन खट्टे-मीठे अनुभवों से दो-चार कराते हैं जिन्हें जानते-पहचानते तो हैं लेकिन जाने क्यों कहने का हौसला नहीं जुटा पाते. उनकी ग़ज़लों में ज़िंदगी का एक चित्र यह भी है-

सहमी-सहमी है सड़क पर ज़िंदगी ।
हादसों ने की है दूभर ज़िंदगी ॥
झोपड़ों में सांस लेना भी कठिन ।
और महलों में मुअत्तर ज़िंदगी ॥

विचार की अपनी परंपरा है. हम उसे चाहते भी हैं और साधते भी हैं. विचार सृजनशीलता की गहरी से गहरी परतों को भेद डालते हैं. विचार अपने विषय को बाहर से ही नहीं भीतर से भी परखना चाहते हैं. चांद शेरी की ग़ज़लों के अर्थ कुछ ऐसे ही विचार देते हैं. चांद शेरी ने अपनी ग़ज़लों को जीवन से गहरे रूप में संपृक्त किया है जिसका प्रभाव उपरोक्त शेरों को पढ़कर आसानी से अनुभव किया जा सकता है. वे अनुभव करते हैं झोपड़ी की समस्या और अनुभव करते हैं महलों की मुअत्तर ज़िंदगी. दोनों जगह आदमी है मगर दोनों जगहों पर पीड़ाएं हैं. इस शेर में उन सच्चाइयों की निशानदेही हुई है. उनके लिए हम सभी कहीं न कहीं जिम्मेवार हैं.

सिर्फ़ इतना ही नहीं भौतिकता की अंधी दौड़ में हांफते दौड़ते जीवन को भी निशाना बनाया है

शायद इसी का नाम तरक्की है दोस्तों ।
नंगी सड़क पे हर बहू बेटी की लाज है ॥

x x x

हमने जिसे भी देखा भूखा हवस का देखा ।
हो जो वफ़ा का भूखा वो दिल दिखाये कोई ॥

गुलजार पोखर,
मुंगेर- ८११२०१ (बिहार)

कथाबिंब/ जुलाई-सितंबर २०१० ॥४८॥

कविता

एक वायलिन और समंदर

✍ राही शंकर

एक लड़की खिड़की में खड़ी है
और एक आदमी उफनते समंदर के
किनारे वायलिन बजा रहा है,
कश्तियां पानी और हवाओं से
उलझ रही हैं।
कोई तूफान आने वाला है,
यह मौसम बता रहा है,
एक लड़की खिड़की में खड़ी है।
पुराने नक्शे क्यों उभर जाना चाहते हैं?
क्यों खो गये लोग बहुत याद आते हैं ?
वायलिन की धुन कितनी मातमी है,
कि आंखों के पास क्यों नमी आ जाती है ?

✍ बूटी मोड़, शॉपी सेंटर, निकट स्टेट बैंक, रांची-८३४००१

कुंडली

महके पूरा थाल

✍ डॉ. कपिल कुमार

तड़का ऐसा दीजिए जब पक जाये दाल ।
घर भी महके साथ में महके पूरा थाल ॥
महके पूरा थाल, स्वाद इतना बढ़ जाये ।
दो रोटी की जगह आदमी छह-छह खाये ॥
कहें 'कपिल' कविराय-रहे दिल फड़का-फड़का ।
आज देश के लिए लगाना होगा तड़का ॥

✍ ४ गंगा भवन, २४ वां रास्ता,
बांद्रा (प.), मुंबई ४०००५०

सब कुछ जैसे हवा के साथ छूट गया है,
कोई सपना था जो समंदर में डूब गया है,
एक लड़की खिड़की में खड़ी है,
एक आदमी समंदर के किनारे,
वायलिन बजा रहा है....

लघुकथाएं

सतर्कता

✍ विकास रोहिल्ला 'प्रीत'

हिरनी ने बचपन में देखा था भेड़ियों की ललचाई आंखों को. तब से वह सतर्क हो गयी थी भेड़ियों से. बचपन से जब उसने जवानी में कदम रखा तो उसने भेड़ियों को देखा ललचायी आंखों के साथ लार टपकाते हुए. यह देख वह दहल गयी और हो गयी और भी सतर्क.

जवानी का पायदान पार कर वह जीवन के संध्या सफर पर है. वह आज भी सतर्क है क्योंकि भेड़ियों की नज़रें आज भी उसे घूरती हैं. शायद अंतिम सांस तक उसे सतर्कता के साथ ही जीना होगा.

✍ २९४/८, महिमा कुंज, असंध, जिला-करनाल, हरियाणा-१३२०३९.

गफलत

✍ जसविंदर शर्मा

वह सारे शहर में बुरी तरह बदनाम था, इसीलिए सब उसे जानते थे. एक दिन वह मर गया, उसे दफनाने की रस्म अदा करने के इंतज़ाम किये गये. शहर के चर्च का पादरी कहीं बाहर गया हुआ था. पड़ोसी कस्बे के पादरी से काम चलाना पड़ा. उस नये पादरी को मरनेवाले इस बदनाम आदमी के बारे में कुछ भी नहीं पता था. न ही उसने पूछा और किसी ने बताने की ज़रूरत समझी. मरने के बाद तो आदमी के अच्छे गुणों की ही चर्चा करते हैं,

सपुर्दे-खाक की रस्म के दौरान मौके की नजाकत कहिए कि भावनाओं की रौ में बह कर वह नया पादरी मृत व्यक्ति के अद्वितीय गुणों की प्रशंसा करने लगा कि मरने वाला एक अच्छा कर्मचारी, एक बेहतरीन पड़ोसी, एक कर्मठ पिता, एक जिम्मेवार पति और न जाने क्या-क्या है. मृत की विधवा ने पास खड़े अपने आठ वर्षीय बेटे के कान में कहा, 'लगता है हम ग़लत मातमपुर्सी में आ गये हैं, जा कर पता करो कि फादर जिस आदमी की इतनी 'तारीफ' कर रहा है वह सच में तुम्हारे हरामी पिता ही हैं न!'

✍ ५/२ डी, रेल विहार, मंसादेवी, पंचकुला-१३४१०९

कथाबिंब/ जुलाई-सितंबर २०१० ॥४९॥

कविता

दो सांसों गा रहीं मल्हारें

✍ उमाश्री

जितना आवश्यक पूजन में तुलसी और चंदन ।
उतना आवश्यक जीवन में आलिंगन, चुंबन ।
मानसून के संग करती हैं,
रोज डांडिया बूंदें,
दो सांसों गा रहीं मल्हारें,
छत पर अंखियां मूंदें,
जितना आवश्यक प्राणों को मधुगंधी चुंबन ।
उतना आवश्यक है प्यार में लहरीला तन मन ।
अंतःपुर में चौक पे रखा,
कलश समर्पण का,
आभामंडल होता है प्रिय,
मधु आकर्षण का,
जितना आवश्यक संस्पर्शों को असगंधी सा मन ।
उतने आवश्यक हैं मिलन में मदमाते ठनगन ।
बहुत ज़रूरी मिलन वृक्ष पर,
नेह ओस का झरना,
अंग अंग को रसमय करता,
प्रिय के साथ संवरना,
जितना आवश्यक जीवन के आंगन में उपवन ।
उतना आवश्यक है छुअन में ठनगन और अनबन ।
जयदेव और वात्सायन ने,
लिखा है समझाकर,
शिरा-शिरा आनंदित होती, पोरपोर उलझाकर,
जितना आवश्यक जीवन में रसमय मधु आलिंगन,
उतनी आवश्यक जीवन में प्राणों को औषजन ।

✍ रेवा हॉस्पिटल के पास,
आनंदनगर, होशंगाबाद (म. प्र.) ४६१००१

गज़लें

✍ चंद्रदेखा ढडवाल

अब तो कुछ भी कहा नहीं जाता ।
वक्त पर अब लिखा नहीं जाता ॥
रेत बिखरी है पानियों की जगह ।
कि अब नदी से बहा नहीं जाता ॥
पांव पर बंदिशों के पहरे हैं ।
हौसलों पर चला नहीं जाता ॥
देखी दीवानगी तेरी इन्सान ।
तेरा खुदा भी हुआ नहीं जाता ॥
बरसों मुन्सिफ रहे हैं जाने दो ।
सूलियों पर चढ़ा नहीं जाता ॥
वो कहेगा तो क्या समां होगा ।
आज जिससे कहा नहीं जाता ॥

x x x

क्या चीज़ है जीना यह कुछ अहद निभाने हैं ।
ख्वाबों में मिले मोती ख्वाबों में लुटाने हैं ॥
इस वक्त की सरदारी तुझपे भी है मुझपे भी ।
बीतेंगे हमीं लम्हे आने हैं न जाने हैं ॥
अंबर पे भरी बैठीं घटाओं का है क्या रुतबा ।
आखिर तो ज़मीं पर ही इनके भी ठिकाने हैं ॥
तितली के परों पर जो रंगों का है इक जादू ।
उससे ही गुलिस्तां को एहसास चुराने हैं ॥
पल छिन ये मेरे यारा दुःख के ही फ़साने हैं ।
चुप रह के छुपाने हैं कभी कह के छुपाने हैं ॥
हर आज के चेहरे पे मुहब्बत के कसीदें हैं ।
पर जी से नहीं जाते रिश्ते जो पुराने हैं ॥

✍ २२७, श्याम नगर,
धर्मशाला, कांगड़ा, (हि. प्र.)

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित साफ-साफ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

- संपादक

कथाबिंब/ जुलाई-सितंबर २०१० ॥५०॥

: प्राप्ति-स्वीकार :

- अलख योगी (उपन्यास) : सुरेंद्र अंचल, अयन प्रकाशन, १/२०, महारौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. २०० रु.
 ठौर-ठिकाना (उपन्यास) : अशोक प्रजापति, वातायन मीडिया एंड पब्लिकेशन्स, एडीसन आर्केड, बेसमेंट, फ्रेजर रोड, पटना-८००००१.
 मू. १२५ रु.
- जुगनी (कथा सं.) : भावना शेखर, राजकमल प्रकाशन, साइंस कॉलेज के सामने, अशोक राजपथ, पटना- ८००००६. मू. १५० रु.
 उजाले दूर नहीं (कथा सं.) : पवित्रा अग्रवाल, गीता प्रकाशन, ४-२-७७१/ए, रामकोट, हैदराबाद-५००००१. मू. १२५ रु.
 आम आदमी और आर्थिक विकास (गद्य) : प्रमोद भार्गव, रजनी प्रकाशन, ५/२८८, वेस्ट कांतीनगर, दिल्ली-११००५१.
 मू. २५० रु.
- मां के आसपास (ल. सं.) : सं.प्रतापसिंह सोढ़ी, गायत्री शक्ति पीठ, रवींद्र नगर, इंदौर- ४५२००१. मू. १२० रु.
 चेहरे के अंदर चेहरा (ल. सं.) : रमेश मनोहरा, अयन प्रकाशन, १/२०, महारौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. १६० रु.
 अंधेरे में आंख (ल. सं.) : अशोक भाटिया, शारदा साहित्य संस्थान, २२०, सेक्टर १६ फरीदाबाद-१२१००१. मू. ५० रु.
 कुछ मिश्री, कुछ नीम (मुक्तक संग्रह) : चंद्रसेन विराट, समांतर पब्लिकेशन, तराना उज्जैन. मू. २५० रु.
 मिथ्या का सत्य (क.सं.) : राजेंद्र वर्मा, जनवादी लेखक संघ, डी-१/१७१, से- एफ, जानकीपुरम, लखनऊ-२२६०२४. मू. ४० रु.
 यादें बोलती हैं (क.सं.) : डॉ. मीना अग्रवाल, हिंदी साहित्य निकेतन, १६ साहित्य विहार, बिजनौर-२४६७०१. मू. १५० रु.
 जर्द पत्ते हरे हो गये (ग.सं.) : चांद शेरी, बोधि प्रकाशन, एफ-७७, से-९ करतारपुरा इ. एरिया, जयपुर. मू. ५० रु.
 सागर के दो छोर (क.सं.) : डॉ. सुमेर चंद्र जैन, प्र. डॉ. आभा-अनिल जैन, प्रेस्टिज नर्सिंग होम, छावनी, नागपुर- ४४००१३. मू. ८० रु.

स्वामला
हर बीसम में संपूर्ण स्वास्थ्यवर्धक

शुद्ध घी में प्रक्रिया किये
दुग्ध आँवलों के साथ मानकीकृत
सुवर्ण भस्म, रजत भस्म, अभ्रक भस्म
जैसे महत्वपूर्ण घटकों से तैयार

**सादे च्यवनप्राश से
कई गुना असरदार**

अधिक जानकारी हेतु संपर्क करें
श्री धूतपापेश्वर लिमिटेड
 १३५, ननुभई देसाई रोड, खेलाडी, मुंबई - ४०० ०५४.
 दूरध्वनी क्र. - ०२२-२००३ ६३०० फैक्स - ०२२ २२८८ १३०८
 ई-मेल - healthcare@sdindia.com

स्वामला
२०० ग्राम, ५०० ग्राम,
१ लिट्र

कथाबिंब/ जुलाई-सितंबर २०१० ।।५१।।

महिला-रचनाकार : अपने आइने में

(“कथाबिंब” के “आमले-सामले” स्तंभ में प्रकाशित सभी महिला-रचनाकारों के आत्मकथों का संकलन.)

संपादक : डॉ. अरविंद

संपर्क :

मानव प्रकाशन

१३१, चित्तरंजन एवेन्यू,

प्रथम तल, कोलकाता-७०० ०७३

मूल्य : २५० रु.

निवेदन

रचनाकारों से

“कथाबिंब” एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, गज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.
२. रचनाएं कागज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. कृपया ई-मेल का उपयोग रचना भेजने के लिए न करें.
३. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफ़ा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा.
४. सामान्यतः प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, गज़ल आदि) भेजें.

ग्राहकों / सदस्यों से

कृपया समय रहते अपने शुल्क का नवीनीकरण करा लें. नये सदस्यों / ग्राहकों को शुल्क प्राप्ति की सूचना अलग से भेजना संभव नहीं है. यदि तीन माह के भीतर नया अंक न मिले तो कृपया अवश्य सूचित करें.

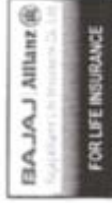
कथाबिंब/ जुलाई-सितंबर २०१० ।।५२।।



SPECIAL SAVINGS BANK ACCOUNT AND CURRENT ACCOUNT

SPECIAL FACILITIES FROM THE BANK *

- PERSONAL ACCIDENTAL INSURANCE
- PERSONAL CHEQUE BOOK
- UTILITY BILL PAYMENT FACILITY
- DEMAND DRAFT/PAY ORDER
- ATM CARD
- CORE BANKING
- GOVERNMENT TAX PAYMENTS



Tie-up



- ANY BRANCH BANKING •
Deposit or withdrawal of money from any of the 25 branches
and One Extension Counter

- NEFT / RTGS (REAL TIME GROSS SETTLEMENT) •
Fast payment system throughout India. All Branches are RTGS enabled



जनकल्याण सहकारी बँक लि.
JANAKALYAN SAHAKARI BANK LTD.

Head Office: Vivek Darshan, 140, Sindhi Society, Chembur, Mumbai - 400 071 • Ph.: 25222582 • Fax: 25230266
Toll Free No. : 1800-22-5381 • Website : www.jksbi@jksbi.com

Rendering personalised banking service through a network of 25 branches spread across Mumbai and its outskirts

CMYK

CMYK

RESIKON[®]

CONSTRUCTION CHEMICAL SYSTEMS



Right Care. Right Protection. Right Choice.

RESIKON SUPERMAX

Polycarboxylate based Super Plasticiser for RMC

RESIKON 400 & RESIKON COASTAL

Acrylic Polymer for Repairs

RESI- POLYPROOF & RESIKON 800

Polymer Water Proofing System



ANUVI CHEMICALS
LIMITED, MUMBAI (INDIA)
AN ISO 9001-2000 COMPANY

Regd. Off.: 205, Narmada, Laxmi Industrial Premises, Pokhran Rd. No.1, Vartak Nagar, Thane (W) 400 606,
Sales. Off.: 212, Godavari, Laxmi Industrial Premises, Pokhran Rd. No.1, Vartak Nagar, Thane (W) 400 606,
Maharashtra, India. Tel : 022- 2585 5400, Fax : 022- 2585 5714. E-mail : anuvi@vsnl.com • Website : www.resikon.net

CMYK

CMYK